॥ वन्दे श्रीवीरमानन्दम् ॥

क्रान्तिकारी जैनाचार्य

लेखक

बाबू राम जैन एम० ए०, एल० एल० बी०,

ज़ीरा

भूमिका-लेखक

डा० बनारसी दास जैन एम० ए०, पी० एच० डी०,

प्रोफेसर ओरियंटल कालिज लाहौर

प्रकाशक

श्री आत्मानन्द जैन सभा, ज़ीरा

वीर संवत् २४६२ } मूल्य आठ आना { विक्रम संवत् १९९२

आत्म संवत् ४० } { ईस्वी सन् १९३६

प्रकाशक—
लाला शान्तिदास जैन
मन्त्री श्री आत्मानन्द जैन सभा,
ज़ीरा (जि० फ़ीरोज़पुर)

मुद्रक—
पण्डित नानकचन्द भनोत एम० ए०
दयानन्द प्रैस, चक्कड़ मुहल्ला,
लाहौर।

निवेदन

श्री संघ जीरा को इस बात का गौरव है कि जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरि जी प्रसिद्ध नाम स्वामी आत्माराम जी का बाल्यकाल जीरा में व्यतीत हुआ। और आपका पालन पोषण दादा जोधामल जी ने किया। जीरा निवासियों की हार्दिक इच्छा थी कि "आत्मजन्मशताब्दि" श्री गुरुदेव के जन्म स्थान लहरा तथा उसके निकट ही जीरा नगर में मनाई जाती। देवगुरु-धर्म के प्रताप से यहाँ के भाई श्रीसंघ पञ्जाब की सहायता से इस महान् कार्य को सफल बनाने की भावना रखते थे। परन्तु आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी का विचार गुजरात प्रान्त में शताब्दि मनाने का होने के कारण श्रीसंघ जीरा तथा महासभा पञ्जाब को श्री जी की आज्ञा के संन्मुख शिर नवाना पड़ा।

इस बात का निश्चय हो जाने पर कि आत्मजन्मशताब्दि चैत्र शुदि १ वि० सं० १९९३ को गुजरात में मनाई जावेगी, श्रीसंघ जीरा ने मिति १७ आश्विन सं० १९९२ को सर्व सम्मति

से प्रस्ताव पास किया कि शताब्दि के उपलक्ष में सभा की ओर से "आत्मभजनावली" प्रकाशित की जावे और आचार्य श्री के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी जावे। यह कार्य मेरे सुपुर्द हुआ। यद्यपि समय थोड़ा था फिर भी भाइयों के आग्रह से और आचार्य श्री के प्रति कर्तव्य पालन करने के उद्देश्य से मैंने इसे स्वीकार किया।

वि० सं० १९८७ में मुझे उर्दू "आत्मचरित्र" लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पुस्तक की प्रस्तावना में मैंने अपनी कठिनाइयों का वर्णन किया था। आचार्य श्री के कार्यमय जीवन के भिन्न भिन्न विषयों पर योग्य व्यक्तियों द्वारा गवेषणा की आवश्यकता है। पंजाब और पंजाब के बाहर जैन भंडारों में जहाँ जहाँ आपकी पुस्तकों के संग्रह हैं, और उनकी हस्तलिखित पुस्तकें, पत्र और लेखादि हैं, उन सबका परिश्रम उठाकर पता लगाना आवश्यक है। क्या ही अच्छा हो, यदि सबका एक स्थान पर संग्रह कर लिया जावे। आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब को यह कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए।

आचार्य श्री का जैनसमाज पर भारी उपकार है। आपके क्रांतिकारी विचारों ने पंजाब के जैनों की काया पलट दी थी। पाठकों को इस छोटी सी पुस्तक में युग-प्रधान "क्रान्तिकारी जैनाचार्य" का संक्षिप्त परिचय मिलेगा। भली प्रकार हिन्दी भाषा में लिखने का अभ्यास न होते हुए भी हिन्दी में यह पुस्तक लिखने का प्रयत्न इसलिए किया कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है और सब प्रान्तों के भाई बहिनें इस से लाभ उठा सकेंगे।

पं० जगदीशलाल शास्त्री लाहौर, पं० मिलखीराम शास्त्री ज़ीरा, ने लिखने में, ला० सुन्दरलाल अध्यक्ष पंजाब संस्कृत बुकडिपो लाहौर, तथा भाई हंसराज एम० ए० ज़ीरा ने प्रकाशन में, और ला० परमानन्द लाहौर ने ब्लॉक बनवाने में मेरी सहायता की है, जिसके लिए मैं इन सबका धन्यवाद करता हूँ। डा० बनारसीदास जैन एम० ए०, पी० ऐच० डी० प्रोफैसर ओरियण्टल कालेज लाहौर ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके इस पुस्तक के लिए विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखी है, जिसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अन्य कार्यों में व्यग्र होने के कारण मुझे अल्प काल में यह पुस्तक लिखनी पड़ी है। इसके प्रकाशन का प्रबन्ध भी दो प्रैसों में करना पड़ा। शीघ्रता के कारण जो अशुद्धियाँ रह गई हों उनका सुधार पाठक स्वयं करने की कृपा करें।

ज़ीरा
२९ फाल्गुन १९९२

बाबूराम जैन

भूमिका

जीरा निवासी मेरे मित्र ला० बाबूराम जी ने श्रीमद् विजयानन्द सूरि की जन्मशताब्दी को स्मृति में 'क्रान्तिकारी जैनाचार्य' नामक पुस्तक लिखा, जिस की प्रेसकापी पढ़ने से मुझे बहुत आनन्द हुआ। इस पर उन्हों ने मुझे इस की भूमिका लिखने को कहा। आचार्य महाराज के प्रति अपनी भक्ति समझ कर मैंने इस काम को सहर्ष स्वीकार किया। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि ला० बाबूराम जी इस काम के लिये पूर्ण योग्यता रखते हैं। इस से पहले भी सन् १९३० में आप उर्दू भाषा में महाराज साहिब की जीवनी लिख चुके हैं, जिस से पाठकवृन्द परिचित होंगे। इस के अतिरिक्त महाराज साहिब की बाल्यावस्था में उन का भरण पोषण लाला जी के पूर्वज ला० जोधामल जी की देख रेख में हुआ था, अतः लाला जी के खान्दान में महाराज साहिब के जीवन के विषय में बहुत प्रामाणिक जानकारी है। इस खान्दान का महाराज जी के सांसारिक भाई बन्धुओं के साथ बहुत देर तक मेल जोल होता रहा है। ला० बाबूराम जी स्वयं भी बड़े विचारशील और साहित्यप्रेमी हैं। अत एव आप की इस कृति के प्रामाणिक होने में कुछ सन्देह नहीं हो सकता।

आचार्य महाराज अपने समय के एक प्रसिद्ध धार्मिक नेता थे। उन का मुख्य उद्देश्य प्राचीन परिपाटियों को नये सांचे में ढालना था। क्योंकि यह बात प्रायः सर्वत्र देखी जाती है कि एक ही प्रथा जो किसी समय हितकारी होती है, समयान्तर में अनिष्टकारी बन जाती है। जैन धर्म का तो प्रधान मन्तव्य है कि द्रव्य की अपेक्षा पदार्थ नित्य और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है, अत एव धर्म का आभ्यन्तर स्वरूप दया आदि नित्य रहते हुए भी बाह्य स्वरूप कर्मकाण्ड, उपासन, पूजा की रीति आदि परिवर्तनशील है, जो कदापि स्थिर नहीं रह सकता। निरन्तर एक स्थिति में रहने से खड़े पानी की भान्ति दुर्गन्धि देने लगता है। जैन इतिहास से इस बात के काफ़ी प्रमाण मिलते हैं, जब कि समय २ पर आचार्यों ने पुरानी प्रथाओं में परिवर्तन किये।

जब आचार्य महाराज का जन्म हुआ, उस समय पंजाब में जैन धर्म की हालत ऐसी गिर चुकी थी कि इसे सुधारने के के लिये एक महान् शक्तिशाली और दूरदर्शी नेता की आवश्यकता थी। दैवयोग से ये गुण महाराज साहिब में विद्यमान थे और उन्हों ने इस काम को अपने हाथ में लिया। महाराज साहिब के काम का महत्त्व तथा औचित्य समझने के लिए यह ज़रूरी है कि पंजाब में जैन धर्म के इतिहास पर एक दृष्टि डाली जाय, जिस से यह बात भली प्रकार मालूम हो जाय कि प्राचीन काल में पंजाब में जैन धर्म का कितना गौरव था और समय के प्रवाह से आधुनिक काल में उस का कितना ह्रास हो गया था।

पंजाब में जैन धर्म का इतिहास

पंजाब में जैनधर्म का इतिहास दो युगों में विभक्त किया जा सकता है—एक पूर्व युग अर्थात् भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण से पूर्व और दूसरा उत्तर युग अर्थात् उन के निर्वाण के पश्चात्।

पूर्व युग

जहां तक लेखक को ज्ञात है, जैन साहित्य में ऐसे उल्लेख बहुत कम हैं, जिन से पूर्व युग में पंजाब में जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध हो। केवल एक घटना है,जो आदिनाथ भगवान् के समय की है, और निरसन्देह पंजाब में जैन धर्म के अस्तित्व को प्रकट करती है। वह इस प्रकार है—

जब भगवान् आदिनाथ दीक्षा लेने लगे तो उन्हों ने अपना राज्य पुत्रों को बांट दिया—अयोध्या का राज्य भरत महाराज को मिला और तक्षशिला का बाहुबली को। प्राचीन काल में तक्षशिला पंजाब का अति प्रसिद्ध नगर था,जो अब शताब्दियों से उजड़ा पड़ा है। इस के खण्डहर रावलपिण्डी शहर से बीस मील उत्तर की ओर टैक्सिला रेलवे स्टेशन के पास विद्यमान हैं। एक बार भगवान् ऋषभदेव तक्षशिला पधारे थे और बाहुबली ने इस उपलक्ष में पदबिम्ब बनवाये थे। जब भरत दिग्विजय कर रहा था, तो बाहुबली ने उस का विरोध किया और इस पर दोनों में घोर युद्ध हुआ*।

* त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १, सर्ग ३ श्लोक ३३९, ३८०; सर्ग ५ युद्धवर्णन।

इस उल्लेख के अतिरिक्त पूर्वयुग के इतिहास में पंजाब के और भी नगरादि का उल्लेख होने की संभावना है, परन्तु अभी तक निश्चयपूर्वक किसी का पता नहीं चला।

उत्तर युग

उत्तर युग का इतिहास तीन कालों में विभक्त हो सकता है। प्रथम काल–भगवान् महावीर के निर्वाण से वि० सं० ९०० तक, द्वितीय काल वि० सं० ९०० से १६०० तक, और तृतीय काल सं० १६०० से अब तक। इन तीनों कालों में भिन्न २ प्रदेशों में जैन धर्म की प्रधानता के उल्लेख मिलते हैं। इस से यह नहीं समझना चाहिये कि उस काल में दूसरे प्रदेश में जैन धर्म का अस्तित्व ही न था।

प्रथम काल

जिस प्रकार दक्षिण में जैन धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाण है कि भद्रबाहु स्वामी के समय में मगध देश में बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा, जिस से साधुओं को अन्नादि का मिलना भी कठिन हो गया। यह देख कर भद्रबाहु स्वामी अपने शिष्यों समेत दक्षिण की ओर कर्णाटक देश में चले गए,* और वहां जाकर धर्म का प्रचार किया तथा कन्नड़ आदि दक्षिणी भाषाओं के साहित्य की नींव डाली। यद्यपि इस प्रकार का कोई उल्लेख पंजाब में जैन धर्म के आगमन के संबन्ध

---

* इतश्च तस्मिन् दुष्काले कराले कालरात्रिवत्।
निर्वाहार्थं साधुसङ्घस्तीरं नीरनिधेर्ययौ॥
(परिशिष्टपर्वन्, सर्ग ९, श्लोक ५५)

में नहीं मिलता, तथापि ऐतिहासिक प्रमाण ऐसे मिलते हैं, जिन के आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि विक्रम संवत् की चौथी पांचवीं शताब्दी में यहां जैन धर्म विद्यमान था। परन्तु जब हम इस बात पर विचार करें कि जैन साधुओं को वर्षा ऋतु के अतिरिक्त और किसी समय एक ही स्थान पर एक मास से अधिक ठहरने की आज्ञा नहीं, और धर्मोपदेश करना साधुओं का कर्तव्य है, तथा व्यापार के निमित्त श्रावक लोग भी बहुत दूर २ की यात्रा करते थे, और सम्प्रति राजा के सबन्ध में लिखा है कि उसने धर्म प्रचार के लिये देशान्तरों में उपदेशक भेजे; तो यह कहना कि जैन धर्म का भारतवर्ष में सर्वत्र शीघ्र ही प्रचार हो गया होगा असंगत नहीं।

पूर्व युग के प्रथम काल में जैनमत पंजाब का तो प्रधान धर्म था ही, और इस के अनुयायी यहां पर्याप्त संख्या में पाए जाते थे, जिन की आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति बहुत ऊँची थी। अफ़ग़ानिस्तान और चीनी तुर्किस्तान में भी इस के मानने वाले विद्यमान थे।

(१) सन् १९२६ में श्रीयुत एन० सी० मेहता ने "स्टडीज़ इन इण्डियन पेण्टिङ्" नाम का पुस्तक प्रकाशित किया। उस में वे एक जर्मन पुस्तक के आधार पर लिखते हैं कि चीनी तुर्किस्तान में जो प्राचीन चित्र मिलते हैं, उन में जैन धर्म से सम्बन्ध रखने वाली घटनाएं भी चित्रित हैं*।

* C. J. Shah: Jainism in Northern India. London, 1932, p. 194.

(२) हूइन चांग जो बौद्ध धर्म के मानने वाला और चीन देश का निवासी था, यात्रा के निमित्त सं० ६८६ से सं० ७१२ तक भारतवर्ष में भ्रमण करता रहा। अपनी यात्रा-वर्णन में लिखता है *—कपिश देश† में बौद्धों के १०० विहार और ६००० भिक्षु हैं, जो प्रायः महायान संप्रदाय के शास्त्रों का अभ्यास करते हैं। यहां दस के करीब देवमन्दिर हैं, और एक हज़ार के लगभग अन्य मतावलम्बियों के मन्दिर हैं। **यहां नग्न भिक्षु मिलते हैं ‡**। कुछ ऐसे हैं जो शरीर पर भस्म लगाते हैं और कई एक वे हैं जो हड्डियों के मुकुट बना कर सिर पर धारण करते हैं।

(३) आगे चल कर हूइन चांग सिंहपुर में आया, और उस के वर्णन में लिखता है कि यहां अशोकराज के स्तूप के निकट वह स्थान है, जहां श्वेत पट धारी पाखंडियों के आदि उपदेष्टा ने बोधि को प्राप्त किया और प्रथम देशना दी। इस घटना का सूचक एक शिलालेख भी यहां रखा हुआ है। पास

---

* **Buddhist Records of the Western World** translated from the Chinese of Hiuen Tsiang by Samuel Beal. 2 Vols, London, 1884. Vol I p. 55.

† अफ़ग़ानिस्तान के किसी भाग का नाम है। संभव है काबुल का इलाका ही हो।

‡ There are naked ascetics." अंग्रेज़ी अनुवादक ने लिखा है कि नग्न भिक्षुओं से निर्ग्रन्थ अथवा दिगम्बर जैनों का आशय है। फुटनोट १९७

ही एक देवमन्दिर है । जो लोग यहां दर्शनार्थ आते हैं, वे घोर तपस्या करते हैं और अपने धर्म में सदा अप्रमत्त रहते हैं। उन के प्रवर्तक ने अपने धार्मिक नियम प्रायः बौद्ध ग्रन्थों से ले कर बनाए हैं । ये लोग भिन्न २ दरजों के हैं और उन के चारित्र संबन्धी नियम अपने दरजे के अनुसार होते हैं। बड़ों को भिक्षु और छोटों को श्रामणेर कहते हैं । उन के धार्मिक कृत्य और जीवनचर्या बौद्ध भिक्षुओं से बहुत कुछ मिलते हैं। भेद केवल इतना है कि उन के सिर पर बालों का छोटा सा जूड़ा होता है, और वे नग्न रहते हैं। जब कभी वे कपड़ा धारण करते हैं तो सफेद कपड़ा लेते हैं। उन को अन्य लोगों से पृथक् करने के लिये यही छोटी २ विशेषताएं हैं । उन के प्रवर्तक की प्रतिमा तथागत की प्रतिमा से मिलती है । विशेषता केवल इतनी है कि वे इसे कपड़े पहनाते हैं, दूसरे लक्षण सब एक ही हैं† ।

सिंहपुर की वर्तमान स्थिति जानने के लिये पुरातत्त्ववेत्ताओं ने प्रयत्न किया। हुइनचांग के कथन पर विचार करके सर् अलग्ज़ैण्डर कनिङ्घम इस परिणाम पर पहुँचा कि यह आजकल का कटास या कटाक्ष तीर्थ होगा, जो जेहलम के जिले में है। इस के पश्चात् डा० बूलर की प्रेरणा से डा० स्टाइन ने (अब सर् ऑरल स्टाइन) जो उस समय ऑरियंटल कॉलेज लाहौर के

---

† Buddhist Records of the Western World. Vol. I pp. 143—45

प्रिन्सिपल थे, स्वयं वहां जा कर सिंहपुर के इस जैन मन्दिर का पता लगाया। उन को मालूम हुआ कि कटास से दो मील के अन्तर पर मूर्त्ति नामक ग्राम में इस के खण्डहर विद्यमान हैं। सर् ऑरल स्टाइन ने झट खुदाई शुरू कर दी। बहुत सी मूर्तियां और मन्दिर के पत्थर प्राप्त हुए, जो छब्बीस ऊंटों पर लाद कर लाहौर लाए गए। अब ये लाहौर म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं। इन में से कुछ प्रदर्शन के लिये निकाले भी गए हैं। इन की कला बड़ी भव्य और मनोहर है‡।

(४) जब सन् १९१३ में भारतीय सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने तक्षशिला के खण्डहरों की खुदाई का काम प्रारम्भ किया, तो सर् जान मार्शल ने अपने संस्कृत के विद्वान् मित्रों से प्राचीन साहित्य में आए हुए तक्षशिला सम्बन्धी उल्लेखों का संग्रह कराया। उन पर विचार करते हुए, वे लिखते हैं—"इन उल्लेखों में से जो उल्लेख जैन शास्त्रों से लिए गए हैं, वे सब से अधिक ध्यान देने योग्य हैं। इन में म्लेच्छों और यवनों का ज़िक्र है, तुरुष्कों द्वारा तक्षशिला के उजाड़े जाने का तथा उन के भय से पाषाण और धातुमयी प्रतिमाओं को रक्षा के निमित्त भूमिगृहों में बन्द करने का ज़िक्र है। ईसा की पांचवीं शताब्दी में जब हूणों ने धर्मराजिका स्तूप का विध्वंस किया, तो बौद्धों ने भी अपनी मूर्तियां पृथ्वी में गाड़ दी थीं। जैन उल्लेखों से यह भी सिद्ध होता है कि तक्षशिला में बहुत से जैन

‡ **Gazetteer of the Jhelum District**, Lahore, 1904, pp. 43—46.

मन्दिर तथा स्तूप होंगे,जिन में से कई तो निःसंदेह अतिविशाल और सुन्दर होंगे। अब मेरा विश्वास है कि सिरकप के एफ और जी ब्लॉक के छोटे मन्दिर इन्हीं मन्दिरों में से हैं। पहले मैं इन मन्दिरों को बौद्ध मन्दिर समझता था, परन्तु अब एक तो इन की रचना मथुरा से निकले हुए आयागपट्टों पर उत्कीर्ण जैन मन्दिरों से मिलती है, और दूसरे इन में और तक्षशिला से अब तक निकले हुए बौद्ध मन्दिरों में काफ़ी भिन्नता है। इन कारणों से अब मैं इन को बौद्ध की अपेक्षा जैन मन्दिर ख्याल करता हूं, यद्यपि इस निश्चय के लिए अभी तक अकाट्य प्रमाण नहीं मिला।"

सर जॉन मार्शल का अनुमान मान देवसूरि प्रबन्ध के आधार पर है, जो इस प्रकार है—

सप्तशती नाम देश में कोरण्टक नाम नगर था, जहाँ भगवान् महावीर स्वामी का मन्दिर था। वहाँ उपाध्याय देवचन्द्र रहते थे। फिरते फिरते एक बार वे बनारस में आए। यहाँ इन को आचायपद मिला और ये देवसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब इन का शत्रुञ्जय तीर्थ पर स्वर्गवास हो गया तो इन के पट्ट पर प्रद्योतन सूरि बैठे (श्लो० ४—१६)

विहार करते हुए प्रद्योतन सूरि नगुल (?) में आए।

---

† Sir John Marshall : Archaeological Annual 1914—15 p. 2 तथा प्रभाचन्द्र सूरि कृत प्रभावक चरित,बम्बई १९०९, में मानदेव सूरि प्रबन्ध पृ० १९२—९५

वहाँ के श्रावक जिनदत्त के पुत्र मानदेव इन के पास दीक्षा ले कर चन्द्रगच्छ के आचार्य बने। जया और विजया नाम की दो देवियां मानदेव की सेविकाएं हो गईं (श्लो० १७—२५)।

अब ऐसा हुआ कि तक्षशिला नगरी में जहां ५०० मंदिर थे, भयानक बीमारी फैल गई और लोग धड़ाधड़ मरने लगे। उस की किसी प्रकार शान्ति न होती थी। तब शासन देवी ने प्रकट होकर कहा कि म्लेच्छों के अत्याचार से सब देवी देवता यहां से चले गये हैं, और आज से तीसरे बरस तुरुष्कों द्वारा तक्षशिला का विध्वंस हो जायगा। इस का उपाय यही है कि तुम सब लोग तक्षशिला छोड़ कर दूसरे स्थानों को चले जाओ। दूसरा उपाय पूछने पर देवी ने कहा कि नड्डूल में गुरु मानदेव ठहरे हुए हैं। उन के चरणों का प्रक्षाल जल ला कर अपने अपने घरों में छिड़क दो, महामारी हट जायगी (२७—४२) उन्होंने वीरदत्त श्रावक को मानदेवसूरि के पास भेजा। वह जा कर उन से शान्तिस्तव लाया, जिसे पढ़ने से महामारी शांत हुई (४९—७५)। तीन बरस बीत जाने पर तुरुष्कों ने इस महानगर का विध्वंस किया। बड़े बूढ़ों से सुना है कि वहां जो पाषाण और धातुमयी प्रतिमाएँ थीं, वे अब तक भूमिगृहों* में विद्यमान हैं (७६—७७)।

---

* लेखक को सूचना मिली है कि पंजाब के एक प्रसिद्ध नगर में जैन मंदिर के नीचे एक ऐसा ही गुप्त भूमिगृह है, जिस का हाल बहुत थोड़े लोग जानते हैं।

(५) शक सं० ७०० (वि० सं० ८३५) में प्रद्योतन सूरि ने अपनी "कुवलयमाला कथा" समाप्त की। इस की उपोद्घात में वे लिखते हैं कि उत्तरापथ में चन्द्रभागा नदी (चिनाब) के किनारे 'पव्वइया' नाम नगरी थी, जिस का राजा तोरमाण था। राजा तोरमाण के गुरु आचार्य हरिगुप्त थे, जो उसी नगरी में ठहरे हुए थे‡।

तोरमाण हून वंश में प्रसिद्ध राजा हुआ है। इस की राजधानी साकल थी। साकल की स्थिति में मत भेद है। प्रायः यह आज कल का स्यालकोट ख्याल किया जाता है। शायद इसी का दूसरा नाम 'पव्वइया' था। पव्वइया नाम इस लिये पड़ा होगा कि यह पर्वत पर बसी हुई थी। इसी प्रदेश में एक पर्वत है, जिसे 'पव्वी' कहते हैं। संभव है कि पव्वी और पव्वइया का कुछ सम्बन्ध हो। राजा तोरमाण के गुरु जैनाचार्य हरिगुप्त होने से अनुमान लग सकता है कि उस समय पंजाब में जैन धर्म का कितना गौरव होगा।

द्वितीय काल

उत्तरयुग के द्वितीय काल में पंजाब के ऐसे प्रदेश में जैन-धर्म के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, जहाँ अब इस का कोई नाम लेवा भी नहीं है। सन् १९३१ की जनसंख्या की रिपोर्ट के अनुसार कांगड़ा जिले में केवल ९४ स्त्री पुरुष जैनी थे। ये भी

‡ C. J. Shah: **Jainism in Northern India** pp. 209-15 तथा "जैनसाहित्यसंशोधक" खण्ड ३ पृ० १६९

प्राय: गत दो तीन सौ बरसों से यहाँ आ कर बसे हुए हैं। इस संख्या को देख कर कौन कह सकता है कि किसी समय कांगड़ा जैनधर्म का प्रधान केन्द्र और महान् तीर्थ था।

* पुरातत्त्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल सर् अलग्ज़ेंडर कनिंगहम ने सन् १८७२ में कांगड़ा का निरीक्षण किया। अपनी रिपोर्ट में वे लिखते हैं—

किले के अन्दर जो छोटे छोटे मन्दिर हैं, उन में एक मंदिर पार्श्वनाथ का है, जिस में आदिनाथ की बड़ी भव्य जिनप्रतिमा स्थापित है। इस प्रतिमा की गद्दी पर एक लेख है, जिस की मिति सं० १५२३ है। यह लेख प्रथम संसारचन्द के समय का है। काली देवी के मन्दिर में भी एक लेख था, जिस की मिति सं० १५६६ है। इस के प्रारम्भ में—

"ओम् स्वस्ति श्री जिनाय नमः"

इस प्रकार जिन भगवान् को नमस्कार किया गया है। कांगड़ा का सब से प्राचीन मन्दिर इन्द्रेश्वर का है, जो वि० संवत् की ग्यारहवीं शताब्दी का बना हुआ कहा जाता है। इस के दरवाज़े के बाहर बहुत सी मूर्तियें रखी हुई हैं, जिन में से दो जिनमूर्तियें हैं। उन में से एक आदिनाथ भगवान् की है, जिस पर यह लेख खुदा हुआ है—

---

* Sir Alexander Cunningham **Archaeological Survey of India Reports** 1872-73, **Vol.** V **pp. 163 H.** तथा "विज्ञप्तित्रिवेणि" भावनगर, सन् १९१६, प्रस्तावना पृ० ९०–९४

(१) ओम् संवत् ३० गच्छे राजकुले सूरिरभूच (द)—
(२) भयचन्द्रमाः [।] तच्छिष्यो मलचन्द्राख्य (स्त)—
(३) त्पदांभोजपट्पदः [।।] सिद्धराजस्ततः ढङ्गः
(४) ढंगादजनि [च]ट्टकः। रल्हेति गृ[हिण]ी [त-
(५) स्य] पा—धर्म—यायिनी। अजनिष्टां सुतौ
(६) [तस्य]ां [जैन] धर्म ध (प)रायणौ। ज्येष्ठः कुण्डलको
(७) [श्र] ।[ता] कनिष्ठः कुमाराभिधः। प्रतिमेयं [च]
(८)- - जिना - -ी - - नुज्ञया। कारिता- - - -
- - - - [।।]

लेख का सार

ओम् सं० ३० में राजकुल गच्छ के आचार्य अभयचन्द्र थे, जिनके शिष्य अमलचन्द्र हुए। उन का भक्त श्रावक सिद्धराज था। उस का पुत्र ढंग हुआ, ढंग का पुत्र चट्टक हुआ, जिस की भार्या रल्हा थी। उस के दो पुत्र हुए—कुण्डलक और कुमार। [उन]की आज्ञा से यह प्रतिमा बनाई गई।

कनिंगहम साहिब लिखते हैं कि "यद्यपि वर्तमान समय में कांगड़े में कोई जैन नहीं है, परन्तु पहले दिल्ली के बादशाहों के नीचे दिगम्बर जैन यहाँ के दीवान थे। इस से पिछले ज़माने में यहाँ पर जैन लोग अवश्य रहा करते होंगे* ।"

---

* देखिये पृष्ठ १२ का नोट।

(२) सं० १९७२ में मुनि जिनविजय जी वाडीपुर क पार्श्वनाथ-भंडार का निरीक्षण कर रहे थे। उस में 'विज्ञप्ति-त्रिवेणि" नाम का एक विज्ञप्ति पत्र उन को मिला, जो माघ सुदी १० सं० १४८४ का लिखा हुआ है। मुनि जी ने सं० १९७३ में बड़ी विद्वत्ता भरी प्रस्तावना के साथ इसे प्रकाशित किया*।

यह पत्र खरतर-गच्छीय श्री जयसागर उपाध्याय ने अपने आचार्य श्री जिनभद्र सूरि की सेवा में भेजा था। इस का सारांश यह है कि उपाध्याय जी फरीदपुर नगर में ठहरे हुए थे। एक दिन प्रातःकाल एक यात्री इन के पास आया, जिस ने पूछने पर बतलाया कि उत्तर दिशा में त्रिगर्तपुर नाम देश है, जिस में सुशर्मपुर नाम नगर में भगवान् आदिनाथ का पवित्र तीर्थ है। यह सुनकर उपाध्याय जी के मन में इस तीर्थ की यात्रा करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। अत एव उन के उपदेश से फरीदपुर के श्रावकों ने नगरकोट की यात्रा के लिये संघ निकालने की आयोजना की। फरीदपुर से चलकर थोड़ी ही दूर विपाशा (ब्यास) नदी के किनारे पड़ाव किया। दूसरे दिन नदी को पार कर जालन्धर की ओर प्रस्थान किया। चलते २ निश्चिन्दीपुर के पास सरोवर के किनारे ठहरे। वहां का सरदार सुलतान संघ के स्वागत के लिए आया। यहां से चलकर तलपाटक (तलवाड़ा) पहुँचे। यहां देवपालपुर के

* 'विज्ञप्तित्रिवेणि' भावनगर, सन् १९१६ प्रस्तावना पृ० ३४-४६।

श्रावक श्रीसंघ को अपने नगर में लेने के लिये आए, परन्तु उपाध्याय जी ने समझा कर पीछे भेज दिया। अब श्रीसंघ व्यास नदी के किनारे होता हुआ मध्यदेश में जा पहुँचा। इन दिनों खोखर सरदार यशोरथ का सिकन्दर के साथ युद्ध हो रहा था। इस भय से संघ कुंगद के घाट से व्यास को पार कर हरियाणा जा पहुँचा। वहां कानुकयक्ष के मन्दिर के नज़दीक सोमाशाह को संघपति का बिरुद दिया। यहां घोर वर्षा के कारण पांच छ दिन ठहरना पड़ा। यहां से चल कर सपादलक्ष (शिवालक) की घाटियों को लांघ कर फिर व्यास को पार किया। आखिरकार पातालगङ्गा के किनारे जा पँहुचा, और दूर से नगरकोट या सुशर्मपुर दिखाई देने लगा। नगरकोट के नीचे बाणगङ्गा नदी बहती है। संघ उसे पार कर ही रहा था कि नगरकोट के श्रावकों ने आकर उस का स्वागत किया। जेठ सुदी ५ सं० १४८४ को श्रीसंघ ने साधु क्षीमसिंह के बनाए हुए श्री शान्ति नाथ के मन्दिर के दर्शन किये। दूसरे आदीश्वर भगवान् के मन्दिर की तय्यारी हुई। इस में पहुंचने के लिये राजमहलों में से हो कर जाना पड़ता था। इस की आज्ञा राजा नरेन्द्रचन्द्र ने सहर्ष प्रदान की। अगले दिन राजा नरेन्द्रचन्द्र ने संघ को दरबार में बुलाया। संघ यहां दस दिन ठहरा और प्रति दिन धूम धाम से पूजादि उत्सव होते रहे। ग्यारहवें दिन वापिस हो कर गोपाचलपुर तीर्थ पर पहुँचे, जहां धिरिराज के बनवाए शान्तिनाथ के मन्दिर के दर्शन किये। वहां से चल कर व्यास के किनारे बसे हुए

नन्दनवनपुर में आए, जहां भगवान् महावीर का मन्दिर था। नन्दनवन पुर से चल कर **कोटिल्ल** ग्राम पहुंचे, जहां पार्श्वनाथ का मन्दिर था। वहां से चलकर और पहाड़ों को लांघ कर **कोठीपुर** नगर में आए। यहां श्रावकों की संख्या अधिक थी इस लिए संघ यहां दस दिन तक ठहरा। ग्यारहवें दिन सतलुज नदी के किनारे पहुंचे और चालीस कोस लंबा मार्ग नावों द्वारा समाप्त कर **देवपालपुर** पत्तन पहुंचे। यहां दस दिन ठहर कर **फरीदपुर** की ओर चल पड़े और सुख शान्ति पूर्वक वापिस पहुँच गए।

उपरोक्त सारांश से पाठक जान सकते हैं कि यह विज्ञप्ति पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से कितने महत्त्व का है। इस का वृत्तान्त तत्कालीन जैन धर्म की स्थिति पर, विशेष कर पंजाब के जालन्धर, होशियारपुर और कांगड़ा ज़िलों में जैन धर्म के अस्तित्व पर कैसा अच्छा प्रकाश डालता है। प्राचीन समय में गुजरात मारवाड़ की तरह पंजाब में भी जैन धर्म का बहुत अच्छा प्रचार था। उस समय इस प्रान्त में सैकड़ों जिन मन्दिर विद्यमान थे, जिन में का आज एक भी दिखाई नहीं देता। जिस नगरकोट-महातीर्थ की यात्रा के लिए इतनी दूर २ से संघ आया था, आज उसका जैन समाज से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाब देश के पूर्व प्रान्त के जैन समाज का गुजरात राजपूताना के जैनियों से अधिक सम्बन्ध नहीं था। क्योंकि—

(१) जब उपाध्याय जयसागर ने आगन्तुक यात्री के मुख से नगरकोट तीर्थ का हाल सुना तो उन्हें विस्मय हुआ। इस से पूर्व वे नगरकोट से परिचित न होंगे।

(२) शत्रुञ्जय, गिरनार, आबू आदि प्रसिद्ध तीर्थों के जो लेख अब तक प्रकाशित हुए हैं, उन में पंजाब के किसी नगरवासी का नाम नहीं आता। दूर होने के कारण इन तीर्थों की यात्रा करना कठिन काम होगा। संभव है कि इस समय के पश्चात् सौ दो सौ बरस तक इस प्रदेश में जैन धर्म का गौरव घट गया हो, क्योंकि जो हस्तलिखित जैन शास्त्र मिलते हैं, उन में विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी की पंजाब में लिखी हुई कोई प्रति नहीं मिली।

(३) इस काल में मुलतान प्रदेश में जैन धर्म का बड़ा ज़ोर था, और इस का संबन्ध गुजरात मारवाड़ से बना हुआ था। सं० ११६९ में खरतर गच्छ के आचार्य जिनदत्त सूरि हुए। एकबार उन्हों ने मुलतान में चौमासा किया। यहां कोमल गच्छ का जोर था। सूरि जी खरतरगच्छीय श्रावकों का आदर करने लगे। हाथी नामी श्रावक को व्याख्यान में सब से आगे बिठलाने लगे। कोमलगच्छियों को यह बात बुरी लगी। उन्हों ने मुलतान के हाकिम को रिश्वत देकर अपने पक्ष पर कर लिया, और कहा कि खरतरगच्छियों को मरवा डालो। हाकिम ने पूछा, "तुम्हारी और खरतरगच्छियों की पहिचान कैसे हो" उन्हों ने कहा, "हम कोमल गच्छीय मस्तक पर तिलक लगाते हैं, खरतरगच्छीय नहीं लगाते"।

यह खबर हाथी को पहुंची। वह झट जिनदत्त सूरि के पास आया। सूरि ने सलाह दी कि तुम हाकिम की स्त्री के पास जाओ और उसे कहो कि आज मेरी मृत्यु होने वाली है और मैं तुम को मिलने आया हूं। जब हाकिम की स्त्री को सब हाल मालूम हुआ, उस ने आग्रह करके हाकिम से उलटा हुकम दिलवा दिया अर्थात् तिलक धारियों का सिर काटा जाय। अब क्या था। कोमलगच्छीय अपना तिलक मिटा कर फिरने लगे। इस प्रकार सिन्ध मण्डल में बहुत से श्रावक खरतर-गच्छीय होगए।

जिनदत्त सूरि के विषय में और भी बहुत वर्णन है। इस में पञ्चनदीपूजास्थापना का सम्बन्ध पंजाब से कहा जा सकता है। यह घटना इस प्रकार हुई—

एक बार सिन्ध मण्डल के श्रावक मिल कर जिनदत्त सूरि के पास आकर ऐसा उपाय पूछने लगे, जिस से सब के सब धनवान् बन जायँ। सूरि ने कहा कि नागपुर (नागौर) से परे मकडाना ग्राम है, वहाँ ३२ अंगुल की प्रतिमा बनवा कर उसे रुई में लपेट कर यहाँ ले आओ, परन्तु रास्ते में किसी के घर भोजन नहीं करना। उसे मन्त्रों द्वारा मैं जहां स्थापित करूंगा। वहां लक्ष्मी स्वयं आजायगी। वे लोग मकडाने गए और प्रतिमा बनवा लाए। रास्ते में नागौर आए। वहां आचार्य शान्ति सूरि भी ठहरे हुए थे। उन्हों ने देखा कि रात में कोई लक्ष्मी को उठाए ले जा रहा है। ध्यान से उठ कर एक देवता को बुला कर पूछा "क्या बात है" ?

वह बोला, "प्रतिमा के साथ लक्ष्मी जा रही है क्यों कि जिनदत्त सूरि उसे खेंच रहे हैं। प्रतिमा की अभी प्रतिष्ठा नहीं हुई"। शान्ति सूरि ने प्रातः काल अपने श्रावकों को कहा कि सिन्ध देश के श्रावक आए हुए हैं, इन्हें घर ले जाकर भोजन कराओ। श्रावक भोजन करने लगे और शान्ति सूरि ने रूई में लिपटी हुई प्रतिमा की अञ्जनशलाका से प्रतिष्ठा कर दी। सिन्धी श्रावकों को इस बात का पता न लगा। प्रतिमा ले कर जिनदत्त सूरि के पास आगए। सूरि ने कहा, "तुम ठगे गए, प्रतिमा की प्रतिष्ठा हो चुकी है"। श्रावकों के आग्रह करने पर सूरि ने दूसरा उपाय बतलाया। ❀"भटनेर

❀ भटनेर या हनुमानगढ बीकानेर रियासत का प्रसिद्ध नगर है। सन १९२० में मैं वहां गया था। यहां के किले में एक बड़ा प्राचीन जैन मन्दिर है, जिस में विक्रम की चौदहवीं पन्दरहवीं शताब्दी की धातुमयी प्रतिमाएं विद्यमान हैं। परन्तु पूजा का उचित प्रबन्ध नहीं। एक श्रावक के पास प्राचीन ग्रन्थों का भारी संग्रह है। एक बार सर अलग्ज़ेण्डर कनिंगहम भी यहां आए थे। उन्हों ने भी भण्डार देखा था, बल्कि ताड़पत्र का ग्रन्थ ले भी गए। सन १८७४ में डा० बूलर ने भी यह भण्डार देखा था। उस में ८०० ग्रन्थ थे, जिन में से पांच उन्हों ने प्रतिलिपि कराने को लिये।

Papers relating to the Collection and Preservation of Ancient Sanskrit Literature in India edited by A. E. Gough, Calcutta, 1878. pp. 120, 149.

के महावीर स्वामी के मन्दिर से माणिभद्र यक्ष की प्रतिमा ले आओ।" चार श्रावक व्यापार का बहाना करके वहां गए। प्रति दिन पूजा करते और माणिभद्र को उठा ले जाने का अवसर ढूंढते। एक दिन अवसर पा कर प्रतिमा को ले उड़े। जब बाहरियों को खबर लगी, वे उन के पीछे भागे। सिन्ध देश में उच्च नगर के पास रिपडी नदी के किनारे जहां पांचों नदियों का सङ्गम है, वहां उन से जा मिले। सिन्धी श्रावक नदी में कूदे। बाहरी भी कूद पड़े। उन के भय से सिन्धी श्रावक प्रतिमा को नदी में छोड़ कर भाग गए। बाहरियों ने प्रतिमा को बहतेरा ढूंढा, मगर न मिली। निराश हो लौट आए। यह हाल सुन कर जिनदत्त सूरि ने नदी पर आ कर माणिभद्र को प्रसन्न किया। वह बोला, "अब मैं बाहिर नहीं आऊंगा। यहां रहता ही आप की सेवा करूंगा। माणिभद्र ने जिनदत्त सूरि से सात वर मांगे, और जिनदत्त सूरि ने माणिभद्र से। इन में एक वर यह था कि जो निर्धन श्रावक सिन्ध में आवेगा, वह धनवान् हो जावेगा। वह सदा गुरुओं की सेवा करता। दोनों की प्रीति हो गई।

एक बार पीरों❀ ने अपने पास सौ रुपये दिखलाए। गुरुओं ने आसन के नीचे एक हज़ार मोहरें दिखला दीं। एक बार

❀ पीरों का नाम आदिक नहीं बतलाया। सिन्ध और मुलतान में मुसलमान काफ़ी संख्या में रहते थे, और उनके पीर भी पहले यहां ही आए थे।

पीर के सामने साधु आहार लेने गए । म्लेच्छों ने कहा "हमें भी भोजन दीजिये'। इस पर सूरि ने उन्हें श्रावकों से मिठाई दिलवा दी। इसी प्रकार दो वार हुआ,जिस से वे संतुष्ट हो गए। एक वार वे लड़ाई में मारे गए। मर कर देवता हुए। रात को स्वप्न में दिखाई देकर सूरि से पूछा "हमारा स्थान कहां है ?" सूरि ने कहा, "पंचनदी में जहां माणिभद्र यक्ष है, वहीं तुम रहो।" इसी तरह देराउर स्वामी हिन्दू राजपूत समय के प्रवाह से निर्धन हो गया। गुरुओं के पास आकर साधुओं का भारवाहक हो गया। सुख से दिन काटने लगा। उसने दाराउर नाम दुर्ग वनवाया। सोमा नामक उसका नौकर था। एक वार लड़ाई में उसके घाव लगे, अनशन करके मर गया और व्यन्तर हुआ। वह भी आकर गुरु से स्थान मांगने लगा। गुरु ने उसे भी पंचनदी में ठहराया। इस प्रदेश में सिलेमा नाम पर्वत है जहां पोडीय क्षेत्रपाल है। वह देशाधिष्ठायक है। माणिभद्र आदि देवताओं ने कहा, "पहले जो तेरी पूजा करेगा उसकी पूजा हम स्वीकार करेंगे, अन्यथा नहीं।" इसलिए पहले उसकी पूजा होती है,फिर माणिभद्र और पीर की। एक बार गुरु ने कहा, अव प्रतिवर्ष तेरी पूजा कोई न करेगा। जो हमारे पट्ट पर बैठेगा, वह एक वार आकर समारोह से पूजा किया करेगा। अब से यही प्रथा होगी। इस तरह पंचनदी में रहने वाले देवता जो खरतर गच्छ के अधिष्ठायक हैं प्रसन्न रहेंगे ❀।

❀श्री जिनविजय द्वारा संपादित "खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह" कलकत्ता, सन् १९३२ पृ० ४७—४९।

तृतीय काल

उत्तरयुग के तृतीय काल का आरम्भ सम्राट् अकबर के हाथ से होता है। एक दिन अकबर बादशाह ने पूछा कि जैन धर्म में बड़ा गुरु कौन है? उत्तर मिला कि खरतरगच्छीय जिनचन्द्र सूरि। तिस पर उसने मन्त्री कर्मचन्द को हुक्म दिया कि उनको यहां बुलाया जाय। सूरि जी उस समय खम्भात में थे। शाही फ़रमान वहीं पहुँचा। सूरि जी ने लाहौर की तरफ बिहार कर दिया और मेडता, नागौर, बीकानेर, सरस्वती-पत्तन (सरसा) आदि होते हुए फागन सुदी १२, सं० १६४८ ईद के दिन लाहौर में प्रवेश किया और सं० १६४९ का चौमासा वहां ही हुआ। इनके साथ जयसोम, रत्ननिधान, गुणविजय, समयसुन्दर आदि कई साधु थे*।

अब जिनचन्द्रसूरि बादशाह से अक्सर मिलते थे। एक दिन अवसर पाकर सूरि जी ने कहा कि द्वारिका में जिन जैन और जैनेतर मन्दिरों का नौरंग खान ने नाश किया है, अब उनकी रक्षा होनी चाहिए। इस पर बादशाह ने हुक्म दिया कि आज से शत्रुञ्जयादि जैनतीर्थ मन्त्री कर्मचन्द के अधीन हुए और तत्काल इसके लिए फ़रमान जारी कर दिये †।

---

*श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देशाई कृत "जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास" अहमदाबाद सन् १९३१, §८४१

† "जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास" §८४२

अकबर कश्मीर जाने लगा और जाने से पहले सूरि जी से मिला। सूरि जी की पुण्यवृद्धि के निमित्त आषाढ़ शुदि ९ से लेकर सात दिन तक जीवहिंसा बन्द करने का फ़रमान सब सूबों में जारी कर दिया। सूरि जी लाहौर रहे परन्तु उनके शिष्य मानसिंह अकबर के साथ कश्मीर गए और वहां बादशाह को कह कर झीलों में मछली आदि का शिकार बन्द कराया ❀।

फागन सुदी २ सं० १६४९ का दिन पंजाब के जैन इतिहास में बड़े महत्त्व का है। उस दिन सम्राट अकबर के इशारे से मन्त्री कर्मचन्द्र ने लाहौर में एक बड़ा भारी उत्सव किया। इस अवसर पर सम्राट अकबर ने जिनचन्द्र सूरि को 'युगप्रधान' की पदवी प्रदान की। उनके शिष्य मानसिंह को 'आचार्य' पद देकर नाम जिनसिंह सूरि रखा। उसी समय जयसोम और रत्ननिधान को 'पाठक' पद तथा गुणविनय और समयसुन्दर को 'वाचक' पद मिला †।

ऐसे दिन का सौभाग्य पंजाब को पूरे ३३२ वर्ष पीछे फिर प्राप्त हुआ, जब सं० १९८१ में सकल श्रीसंघ ने लाहौर

❀ "जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास" § ८४३ § ८४२

† " " " " § ८४४ तथा "खरतर गच्छ पट्टावली संग्रह", कलकत्ता सन् १९३२ पृ० १४, ३४, ५६।

में एकत्रित होकर श्री वल्लभविजय जी को सूरि पद से विभूषित किया।

इस उत्सव की खुशी में कर्मचन्द्र मन्त्री की प्रार्थना पर अकबर ने 'अमारि' घोषणा का हुकम दिया अर्थात् एक दिन के लिये लाहौर में सब प्रकार की जीवहिंसा बन्द की गई।

मन्त्री कर्मचन्द्र ने अपने स्वामी राजा राजसिंह की आज्ञा से सतलुज, डेक तथा रावी इन तीन नदियों में मछली पकड़ना बन्द कराया और हडफा में रहने वाले बलोचों ने कुछ कैदी पकड़ रखे थे, उनको छुड़वाया❀।

बीकानेर निवासी श्रीयुत अगरचन्द नाहटा ने मुझे बतलाया कि मन्त्री कर्मचन्द्र ने लाहौर में श्री जिनचन्द्र सूरि की चरण-पादुका स्थापित की थीं। वे लाहौर के जैन श्वेतांबर मन्दिर में अब तक विद्यमान हैं।

पूर्वोक्त समयसुन्दर जी ने सं० १६४६ के लगभग "अष्टलक्षी" की रचना शुरू की। इस में "राज नो ददते सौख्यम्" इस वाक्य के आठ लाख अर्थ किये हैं। यह पुस्तक "अर्थरत्नावली" टीका सहित लाभपुर (लाहौर) में सं० १६७६ में समाप्त हुआ। इसका जो भाग सं० १६४९ में लिखा गया था, उसे अकबर ने अपने दरबार में सुना और उसकी प्रति स्वीकृति के उपलक्ष से अपने हाथ में लेकर फिर समय सुन्दर को अर्पण कर दी ‡।

❀ "जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास" §८३९

‡ " " §८४७, ८६४। Peterson I68

क्षेमशाखा के प्रमोद् माणिक्य के शिष्य जयसोम उपाध्याय ने सं० १६५० में विजया दशमी के दिन लाहौर में रह कर संस्कृत में "मन्त्री कर्मचन्द्र प्रवन्ध" की रचना की ❀ ।

तृतीय काल के आरम्भ में यहां खरतर गच्छ की प्रधानता थी, परन्तु इसका वल शीघ्र ही घट गया । इसके पश्चात् यतियों और स्थानकवासी संप्रदाय का जोर हुआ । प्रायः प्रत्येक प्रसिद्ध नगर में यतियों का उपाश्रय था । लेकिन अब यतियों की सत्ता नाम मात्र की रह गई है ।

पञ्जाव के पूर्व भाग में लुम्पक मत के उत्तराध गच्छ के यतियों की प्रधानता थी । इन का मुख्य उपाश्रय अम्बाला शहर में था, जिस के अधीन कई छोटे २ उपाश्रय थे । जैसे— साढौर, सुनाम, सामाणा रोपड़ आदि । उत्तराध गच्छ के मूल पुरुप जटमल या जट्टू ऋपि थे जो सं० १६५० के लगभग हुए । इन की शिष्य परम्परा ग्यारह पीढ़ी तक चली । अन्तिम शिष्य उत्तम ऋपि थे, जो सं० १९३४ में स्व० श्रीमद् विजयानन्द सूरि के हाथ से दीक्षित होकर मुनि उद्योतविजय के नाम से प्रसिद्ध हुए । इनका पुस्तक-भण्डार आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला के पास है ।

लुधियाना, मालेरकोटला, जालन्धर, फगवाड़ा, लाहौर, अमृतसर, जण्डियाला, पट्टी, मुलतान आदि नगरों में लोंका तथा खरतर गच्छ के यतियों के उपाश्रय थे ।

❀ जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास §८४४

फगवाड़ा (ज़िला जालन्धर) के यतियों में मेघराज हिन्दी भाषा के अच्छे कवि हो गए हैं। इनके रचे हुए मेघमाला (सं० १८१७) मेघविनोद, छन्दप्रकाश आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

यतियों के साथ २ स्थानकवासी मुनियों ने अपनी संप्रदाय का प्रचार किया। इनके लिपिकृत ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इनके कई टोले थे, जो पञ्जाब में सर्वत्र विहार करते थे। आर्यकाएं भी बहुत थीं। उन में आर्या सुखमणी, पूरा जी आदि के नकल किये हुए ग्रन्थ मिलते हैं।

तृतीय काल में पञ्जाब में दिगम्बर संप्रदाय का कुछ अधिक ज़ोर दिखाई नहीं देता। तथापि नकोदर के खण्डेरवाल तथा कई शहरों के अग्रवाल पहले दिगम्बर संप्रदायी थे। नकोदर के श्वेताम्बर मन्दिर में कुछ प्रतिमाएं दिगम्बर हैं।

विक्रम की अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में जैन धर्म ने पञ्जाब में कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं की थी। न कोई मन्दिर या उपाश्रय बने, न किसी ग्रन्थ की रचना हुई, और न ही कोई ऐसा कार्य हुआ, जिस से जैन धर्म के गौरव की छाप अन्य जातियों के हृदय पर पड़ती। इसके उलट जैन धर्म की अवनति अवश्य हुई,जिस के मुख्य कारण नीचे वर्णन किये जाते हैं:—

सांसारिक दृष्टि से यति लोग बहुत अच्छा काम कर रहे थे अर्थात् वैद्यक और ज्योतिष की प्रैक्टिस करके जनता को लाभ पहुंचाते थे। साधारण लोगों से फ़ीस आदिक भी न लेते

थे, क्योंकि बड़े २ धनवान् पुरुषों को उन से काम पड़ता था, सो फीस धनवानों से ही लेते थे। कई यतियों को जागीरें मिली हुई थीं और वे बड़े ठाठ बाठ से रहते थे। पूज्य महताब ऋषि जिनके अधीन लुधियाना, मालेरकोटला और फरीदकोट के उपाश्रय थे प्रसिद्ध वैद्य थे। पटियाला, नाभा, जींद, फरीदकोट, मालेरकोटला, कश्मीर आदि के राजा इन का मान करते थे। यदि ज्योतिष और वैद्यक द्वारा यतियों ने अपना तथा जैन धर्म का मान कराया तो साथ ही कई प्रकार की मिथ्यात्व भी फैलाई। ये अपने सेवकों को मन्त्र, यन्त्र, टोने आदि बतलाते उनसे भूत, प्रेत, पीर आदिक की मन्नत करवाते तथा कभी कभी देवी देवताओं के निमित्त मांस की बली भी दिलवा देते थे।

अब स्थानकवासी संप्रदाय के प्रचार का परिणाम देखिये। इस संप्रदाय के आरम्भ का कारण यह है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में गुजरात और मारवाड़ में जैनधर्म की दशा कुछ अजीब सी हो गई थी †। पिछले पांच छः सौ बरसों से जैन साधु राज सभाओं में जाने लग गए थे। वे अपने आश्रयदाता या भक्त राजाओं की कृपा कटाक्ष का ध्यान रखते। उनको प्रसन्न करने के लिए तथा अपनी जय और प्रशंसा के लिए वे जैन मत के तथा अन्य मत के नेताओं के साथ वाद-विवाद

---

†मोहनलाल देसाई—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, विभाग ५, प्रकरण ५, सोलवां शतक मां संप्रदाय नी छिन्नभिन्नता।

करने लग गए थे। वहुधा ये विवाद शब्दाडम्बर ही होते थे❀।

इसी समय में वहुत सा कथानक रूप जैन साहित्य रचा गया। ब्राह्मण पण्डितों की देखा देखी जैन साधु भी काव्य, नाटक आदि की रचना करने लगे। भिक्षु की अपेक्षा उनमें पण्डित्त और कवि की मात्रा अधिक थी †।

इसी समय तान्त्रिक संप्रदाय ने भी जैन धर्म पर कुछ प्रभाव डाला प्रतीत होता है। पूजा विधि जो पहले वहुत सरल थी अव काफ़ी जटिल हो गई थी। तन्त्रों की रीति पर स्तोत्र मन्त्र, यन्त्र आदि की रचना हुई। अन्य मत के देवी देवताओं का ग्रहण हुआ (देखिये ऊपर जिन चन्द्रसूरि का पञ्चनदी-पूजा स्थापना का वृत्तान्त)। तीर्थयात्रा के लिए धूमधाम से संघ निकालने की रीति चल पड़ी, जिसमें साधु भी भाग लेते थे। भगवान् महावीर स्वामी का चलाया हुआ निवृत्ति और तपस्या

❀ मोहनलाल देशाई—§८२० तपागच्छ और खरतर विरोध §८२२ ब्राह्मण पण्डितों से विवाद। §८२९ उदयपुर में शास्त्रार्थ। §९०८ आ शतक मां गच्छ गच्छ वच्चे ना विरोध अने झगड़ा थया।

† केचित् काव्यकलाकलापकुशलाः केचिच्च सल्लक्षणाः,
केचित् तर्कवितर्कतत्त्वनिपुणाः केचिच्च सैद्धान्तिकाः।
केचिन्निस्तुषवीजशास्त्रनिरता ज्योतिर्विदो भूरयः,
चारित्रैकविलासवासभवनाः स्वल्पाः पुनः सूरयः॥

[सूक्तमुक्तावली ५० क्रियासूक्त]

का मार्ग गौण हो गया, अथवा यों कहिये कि आदर्श भिक्षु-जीवन जिसका वर्णन आचाराङ्ग, दशवैकालिक, मूलाचार आदि प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है लुप्त हो गया। समय के प्रभाव से जैन साधु भी वाह्य आडम्बर और घूमधाम पसन्द करने लगे*। उपदेशक की जगह वे अपने श्रावकों के शासक हो गए।

इस समय जैन संघ अनेक गच्छों, संप्रदायों और टोलों में विभक्त हो गया था, जो प्रायः एक दूसरे के विरोधी होते थे। कई साधु खास २ उपाश्रयों से अपना संबन्ध जोड़ बैठे, जिस करके वे चैत्यवासी कहलाने लगे और अन्त में डेराधारी यति हो गए। इन को धर्म की अपेक्षा धन और आडम्बर से अधिक प्रेम था।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में जैन संघ (विशेष कर साधु समुदाय) की जो दशा हो गई थी, उसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है। प्राचीन भिक्षु-जीवन की दृष्टि से यह दशा उन्नत नहीं थी, किन्तु अधः पतन था। समय २ पर इसे सुधारने के प्रयत्न किये गए। ऐसा ही प्रयत्न सं० १५०८ में लोंकाशाह ने किया जिसका फल स्वरूप स्थानकवासी या

---

* सूरिपद मिलने पर नन्दी महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था, जिसमें लाखों रुपये खर्च हो जाते थे।

[खरतरगच्छ पट्टावली]

ढूंढक संप्रदाय अब तक विद्यमान है *। लोंकाशाह ने इस अवनति का कारण और अपने सुधार का समर्थन कल्प सूत्र के एक वाक्य में पाया, जहां लिखा है कि जिस समय भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ, उस समय उनकी जन्म राशि पर क्षुद्रात्म-(भस्म-) ग्रह आया हुआ था। इसका फल यह हुआ कि दो हजार बरस तक आदर्श साधु जीवन लुप्त रहा †। लोंकाशाह ने शास्त्रोक्त साधु जीवन को फिर से लाने की चेष्टा की; अत एव उन्हों ने त्याग, वैराग्य, निवृत्ति तथा तपस्या पर बहुत अधिक जोर दिया। मूर्तिपूजन तथा मूर्ति संबन्धी क्रियाकलाप को आरम्भ संरम्भ का पोषक बतला कर उसका सर्वथा निषेध किया। आगम सिद्धान्त में से ❀३२ सूत्रों को प्रामाणिक मान कर टीका आदि अर्वाचीन साहित्य को अप्रामाणिक ठहराया। सूत्रों का अर्थ टब्बा (गुजराती अनुवाद)

---

* Sri Prem Chand, S. S. Jain Muni Punjabee : **Mithya khandana containing the Origin of Jainism.** Ludhiana, 1914 Pp. 95, 100

† H. Jacobi : **Translation of the Kalpasutra** in 'the Sacred Books of the East'-Series V. L XXII p. 266.

❀अर्थात् ११ अङ्ग, १२ उपाङ्ग, ४ छेद सूत्र [निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कन्ध], ४ मूलसूत्र (अनुयोगद्वार, नन्दीसूत्र, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन) और ३२ वां आवश्यक सूत्र।

के आधार पर करने लगे। कोरे ज्ञान की महत्ता घटा कर ज्ञान सहित चारित्र को प्रधान बनाया।

कुछ समय तक लौंकाशाह के अनुयायी अपने मिशन में सफल हुए, परन्तु धीरे २ ये दूसरी ओर झुक गए अर्थात् इन्हों ने ज्ञान को सर्वथा गौण कर दिया। इन में उच्च विद्या का अभाव हो गया। यहां तक कि व्याकरण को 'व्याधिकरण' कहने लग गए। इन के हाथ से नक़ल किये हुए ग्रन्थों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे व्याकरण से अनभिज्ञ थे। निवृत्ति और तपस्या के नाम पर वे ऐसे २ काम करने लगे, जिन से अन्य समाजों की दृष्टि में जैन धर्म निन्दास्पद हो गया। उदाहरण के लिये—(१)अन्य मतावलम्बियों में यह बात प्रसिद्ध थी कि जैन साधु शौच जाने के पश्चात् मल को बखेर देते हैं ताकि उस में कृमि आदि जन्तु उत्पन्न न हो जायं। (२) जैन साधु रात को अपने पास पानी नहीं रखते, और यदि रात को शौच जाना पड़े तो बालकों की तरह कपड़े से सफ़ाई करते हैं। (३) इस कारण से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वैष्णव लोग जैन साधुओं को अपनी रसोई में नहीं आने देते थे। (४) वे अपने श्रावकों को नियम करा देते थे कि महीनों तक स्नान मत करो। (५) जब कोई श्रावक नहाने लगता तो नहाने के लिये किसी दूसरे व्यक्ति से आज्ञा मांग लेता। इसका अभिप्राय यह था कि श्रावक के नहाने का पाप आज्ञा देने वाले व्यक्ति को लग जाय। (६) प्रायः प्रसिद्ध था कि कट्टर जैनी वह होता है, जिस के दांतों पर इतनी मैल जमी हुई हो

कि दूर से पैसा फेंकने पर वह दांतों से चिपक जाय, इत्यादि २।

पञ्जाब में जैन धर्म की यह अवस्था थी जब कि स्व० श्रीमद् विजयानन्द सूरि का जन्म हुआ। उनके प्रयत्न से जैन धर्म ने अपना खोया हुआ गौरव फिर से प्राप्त किया। इन की देखा देखी स्थानकवासी संप्रदाय में भी जागृति पैदा हुई। अब ये साधु व्याकरण पढने लग गए हैं। निर्युक्ति, भाष्य टीका आदि के आधार पर सूत्रों का अध्ययन करते हैं। स्वयं ग्रन्थ रचते हैं। इस दिशा में पञ्जाब के उपाध्याय आत्माराम जी तथा गुजरात के शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी का काम विशेष उल्लेखनीय है ॐ। किं बहुना अब स्थानक वासी साधु भी पाठशालाएं, गुरुकुल, लाइब्रेरियां, आदि खुलवाकर विद्या प्रचार करने लग गए हैं।

इस समय पंजाब में जैनधर्म का यदि कुछ गौरव है, और वह कुछ उन्नति कर रहा है तो उस सब का श्रेय स्वामी श्रीमद्विजयानन्द सूरि को है।

अन्त में निवेदन है कि जिस महात्मा ने इतना उपकार किया है, उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये तथा उनके दर्शाए मार्ग पर चलने के लिए जैनी मात्र को भरसक प्रयत्न करना

ॐ उपाध्याय आत्माराम ने कई सूत्रों का अनुवाद तथा टीका के आधार पर भावार्थ किया है। शातावधानी रत्नचन्द्र ने अर्धमागधी कोश,तथा व्याकरण की रचना की है।

चाहिये। पंजाब में एक सरस्वती मन्दिर खोलने की उनकी अन्तिम भावना थी जो अब तक (उनके स्वर्गवास को चालीस बरस हो चुकने पर भी) अपूर्ण पड़ी है। क्या जैनसमाज उनकी इस अन्तिम भावना को कार्यरूप में परिणत करके पुण्य उपार्जन करेगा ?

ला० बाबूराम जी ने उनका जीवन चरित्र लिख कर अपने कर्तव्य का पालन किया है। आशा है कि वे इसे बढ़ा कर महाराज साहिब के समग्र संघाड़े का पूर्ण और विस्तृत इतिहास लिखने की चेष्टा करेंगे। महाराज साहिब के पश्चात् उनके शिष्यों ने पञ्जाब के बाहिर विद्या प्रचार का उत्तम काम किया है, जिसका पञ्जाब के जैन समाज को मान होना चाहिये।

ओरियंटल कालेज, लाहौर
फाल्गुन पूर्णिमा, सं० १९९२

बनारसीदास जैन

* श्रीवीतरागाय नमः *

क्रान्तिकारी जैनाचार्य

श्री विजयानन्द सूरि

भारतवर्ष में धार्मिक क्रान्ति

भारतवर्ष में धार्मिक क्रान्ति भिन्न भिन्न काल में होती रही है। कभी इस धर्म के अनुयायी उन्नति के शिखर पर पहुंच गये कभी उस धर्म के। बहुत देर तक जैन बौद्ध और वैदिक धर्मियों का परस्पर सङ्ग्राम प्रचलित रहा, परन्तु सदैव भारतवर्ष में भारतवासियों का ही शासन स्थापित रहा, हां, शासक अवश्य कभी जैन धर्म के अनुयायी बन गये, कभी बौद्ध तथा वैदिक धर्मी। ऐसा भी हुआ कि यदि पिता बौद्ध है तो पुत्र जैन और उसकी सन्तति वैदिक धर्मी हुए। इस प्रकार बहुत काल पर्यंत धार्मिक नेता अपने बल और बुद्धि से अपने अपने धर्म की पुष्टि करते रहे। भारतवर्ष के राजनीतिक अधःपतन के साथ भारतवासियों का विपद्यक्र आरम्भ हुआ। मुसलमानों ने पश्चिमोत्तर दिशा से भारतवर्ष पर आक्रमण किये। सुलतान महमूद सत्रह बार गजनी से भारतवर्ष में आया और लूट मार कर सम्पत्ति ले गया। हर एक आक्रमण में उसने बलात् बल पूर्वक इस्लाम का प्रचार किया मन्दिरों को लूट लिया, भण्डारों को आग लगा दी, मूर्तियों को खण्डित कर दिया। हजारों मनुष्यों को दास बनाया और उन्हें स्वधर्म त्याग के

लिये विवश किया। महमूद के बाद अन्य मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस्लाम की वृद्धि के लिये जो जो अत्याचार भारतवासियों पर किये वे अवर्णनीय हैं। विशाल देवमन्दिरों को गिराकर खाक में मिला दिया। धार्मिक उत्सव बंद कर दिये। तीर्थों पर यात्री टैक्स लगा दिया और उन्हें धार्मिक कर्तव्यों के पालन से रोक दिया। इतिहास साक्षी है कि औरंगजेब, फरुकसीयर आदि बादशाहों ने वह भीषण अत्याचार किये कि जिनके पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसी काल में शिवा जी मरहट्टा ने इस्लामी अत्याचार का विरोध करके महाराष्ट्र में हिन्दुराज्य स्थापित कर दिया। पंजाब में सिक्खगुरु कर्मक्षेत्र में उतरे और श्री गोविंदसिंह ने अपने पिता और पुत्रों की बलि देकर खालसा वीर उत्पन्न किये। वीर वैरागी बंदा बहादुर ने बहुत वीरता से अत्याचार का सामना किया। भाई मतीराम ने धर्म के लिये जीवन अर्पण कर दिया। मुसलमानों के अत्याचार ने हिंदू जाति में नवीन शक्ति पैदा करके बलिदान का असाधारण उत्साह उत्पन्न कर दिया।

जिस पराक्रम से भारतवासियों ने धार्मिक अन्धविश्वास और पक्षपात का सामना किया वह सुनहरे अक्षरों में लिखा जाने योग्य है। इस्लामी सभ्यता ने बहुत से मनुष्यों को धर्म से गिरा दिया। मुसलमान बादशाहों के पाशविक व्यवहार से हिन्दू जगत में क्रान्ति पैदा हो गयी। देश के हर एक भाग में महा पुरुषों ने जन्म लिया और अपने धर्म की रक्षा के लिये साहसपूर्ण कार्य किये। श्री हेमचंद्र जी

सूरि, श्री आनंद विमलसूरि, श्री सोमसुन्दर सूरि, श्री हीर विजयसूरि, श्री यशोविजय सूरि आदि महा पुरुषों ने आपत्काल में जैन धर्म की रक्षा की। पंजाब में गुरुनानक जी संयुक्तप्रान्त में रामानंद जी व कबीर जी, राजपूताने में जयदेव जी, महाराष्ट्र में रामदास और तुकाराम जी और बंगाल में चैतन्य ने लोगों को धर्म का उपदेश दिया। आरम्भ से ही भारतवासियों ने अपनी सभ्यता की रक्षा के लिये अपने धार्मिक नित्य नियमों का दृढता से पालन किया और इसी कारण वे मुसलमान आक्रमणकारियों से विशेषतः बचे रहे। मुगलवंश की अवनति होते ही भारतवर्ष छोटी २ रियासतों में बंट गया। मुगलसाम्राज्य के नष्ट भ्रष्ट होने पर भारतवर्ष खण्ड खण्ड में विभक्त होकर बलहीन राजाओं और नवावों के अधिकार में आ गया। वे परस्पर लड़झगड़ रहे थे जब कि यूरोप की जातियां इस देश में व्यापार के उद्देश्य से आयीं और भारतवर्ष की नैतिक दुरवस्था को देखकर धीरे धीरे अपना प्रभाव डालने लगीं। भारतवासी परस्पर युद्ध में लगे हुए थे जिस से देश को अत्यन्त हानि पहुंच रही थी। ऐसी भयङ्कर देश दुर्दशा के काल में जैनाचार्यों को प्रचार का काम बंद करना पड़ा। जैन समाज की सङ्घ शक्ति निर्बल हो गयी। साधु मुनिराज विहार की कठिनता के कारण प्रमादवश हो गये। समय आया जब कि साधारण साधु और यति अपने संयम से भ्रष्ट होकर परिग्रह के जाल में फंस गये और उपाश्रयों को अपनी सम्पत्ति समझने लगे। यति लोग जो अपने शील,

संयम, तप और जप के कारण पूज्य माने जाते थे धीरे धीरे नियमों से गिरकर शाही ठाट से जीवन व्यतीत करने लगे। वे धार्मिक उपदेश के अतिरिक्त वैद्यक और ज्योतिष की प्रैक्टिस करने लगे। इस कार्य में यतियों को आयुर्वेदाचार्यों और यूनानी हकीमों से भी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी और ज्योतिषसिद्धि के लिये यन्त्रमन्त्रों का सहारा लेना पड़ा जिसका प्रमाण उनके हस्त लिखित ग्रन्थों से मिलता है। जब तक जैन धर्म के प्रचार का काम बुद्धिमान, त्यागी, दीर्घदर्शी तथा कालविचक्षण साधुओं के हाथ में था, जैन समाज में मिथ्यात्व का अभाव रहा। परन्तु यतियों को द्रव्यसम्पत्ति का मोह था और धनोपार्जन के लिये वे जैनों को मिथ्यात्व के कूप में ले जाने से भी न झिझकते थे। उनके लिये देवपूजन मानसिक इच्छाओं के पूर्ण करने का एक उपाय बन गया। उनकी देखा देखी श्रावक भी इसी मार्ग पर चलने लगे। वास्तविक धार्मिक उन्नति के स्थान पर स्वार्थसिद्धि का भाव प्रबल हो गया। जैन समाज की स्थिति प्रतिदिन कमजोर होती गयी। लोग अपनी रीतियों को छोड़ बैठे और देश की प्रचलित कुरीतियों का शिकार हो गये। ऐसे आपत्काल में न केवल जैनधर्म की ही हानि हुई किन्तु समस्त भारतीयधर्मों की अवनति हो गयी। उस अन्धकार काल में अत्याचार के भय से ऋषि तथा मुनियों के बनाये हुए ग्रन्थ भूमिगृह में बन्द कर दिये गये। ज्ञान के लोप हो जाने से अज्ञानतिमिर छा गया। उस समय न केवल जैन समाज में ही अपितु देश भर में अज्ञान फैला हुआ था। जैन

धर्म अवनत दशा को पहुंच चुका था। द्वेष और ईर्ष्या के कारण जैनधर्म को नास्तिक मत कहा गया। किसी ने इसे बुद्धमत की शाखा कहा। किसी ने महावीर स्वामी को इस का प्रवर्त्तक कहा। किसी ने इसे बनियों का धर्म कह कर पुकारा। जैनधर्म के तीर्थंकरों की हंसी उड़ायी गयी। जैन धर्म पर असहनीय आक्रमण किये गये परन्तु जैनों को अज्ञान ने इस तरह घेर लिया था, कि उन्हें परमार्थ की कुछ सुध बुध न थी। ब्रिटिशसाम्राज्य स्थापित होते ही ईसाई मिशनरी कटिबद्ध होकर विजित देश में प्रचार करने लगे। भारतवर्ष में प्रथम प्रोटेस्टेंट मिशनरी विलियम केरी* एक अंगरेज बैपटिस्ट थे, जो कलकत्ते में ११ नवम्बर सन् १७९३ में आये। बंगाली और संस्कृत पढ़कर उन्होंने बाइबिल का अनुवाद बंगाली भाषा में किया। फिर कलकत्ता वेलज़ली कालेज में संस्कृत तथा बंगाली के प्रोफेसर नियत हो गये। ज्यों ज्यों ब्रिटिश साम्राज्य बढा मिशनरियों का कार्यक्षेत्र भी विस्तृत होता गया। सन् १८१३ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का चार्टर पार्लियामेण्ट ने पुनः स्वीकृत किया उस समय पार्लियामेण्ट के मेम्बरों ने कम्पनी के संचालकों के विरोध पर ध्यान न देते हुए चार्टर में एक यह शर्त भी लिख दी, कि ईसाई मिशनरियों को भारतवर्ष में प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। थोड़े ही समय में

---

* Modern Religious Movement in India by Farquhar P. 6.

† Modern Religious Movement in India by Farquhar P. 15.

भारतवर्ष में मिशनरी ही मिशनरी दिखायी देने लगे। पंजाब में प्रथम १८३४ में अमरीका के प्रेसबिटेरियन मिशन ने लुधियाना को अपना केन्द्र बनाया‡ और धीरे धीरे प्रचार के लिये कालेज और अस्पताल स्थापित कर दिये। सन् १८७७ में कैम्ब्रिज मिशन ने भी कार्य आरम्भ कर दिया फिर मेथोडिस्ट, एपिसकोपल, स्काचचर्च, मोरोविअन, अमेरिकन, यूनाइटिड प्रेसबिटेरियन, ज़नाना बाईबल, मेडिकल मिशन, सालवेशन आर्मी, रोमन कैथोलिक आदि ने जोर शोर से प्रचार शुरू किया। भारत वासियों को ईसाई बनाने के लिये नाना प्रकार के प्रपञ्च रचे गये। भारतीय धर्मों को बदनाम करने के लिये पुस्तकें लिखी गयीं। लोगों को धर्म भ्रष्ट करने के लिये उनके मन में शङ्काएं उत्पन्न की गयीं। ईसाई धर्म की विशेषताएं रुपये को पानी की तरह बहाकर दिखायी गयीं। पादरियों ने स्थान स्थान पर स्कूल स्थापित कर दिये। प्रेम और लोभ से बाइबिल की शिक्षा दी गयी। स्कूलों के अतिरिक्त चैरिटेबल अस्पताल, अनाथालय, विधवाश्रम, तथा अन्य उपयोगी संस्थाएं खोली गयीं। ईसाइयों की दिखावे की निस्स्वार्थता और सेवाभाव से प्रभावित होकर शिक्षित तथा अशिक्षित जनता उनकी ओर झुक पड़ी। पादरियों ने भारतवर्ष के सामाजिक दोषों से लाभ उठाकर अपने संमोहक ढंगों और रहन सहन के

‡ The Imperial Gazetteer of India Vol. 20. P. 29.

तरीकों की तरफ शिक्षित युवकों को खींचा।

भारतवर्ष पर इस्लाम का आक्रमण आंधी की तरह था परन्तु ईसाई विजेताओं ने ईसाई धर्म का प्रचार मुसलमान बादशाहों की तरह तलवार से नहीं किया। उन्होंने हर एक काम चतुरता से किया, इसीलिये उन्हें शीघ्र सफलता प्राप्त हुई। ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकारियों ने अन्य धर्मियों पर अपने धर्म प्रचार के लिये अत्याचार नहीं किये। उनका प्रजा के साथ धर्मसम्बन्धी व्यवहार नम्र रहा है। शुरू शुरू में तो ऐसा भी हुआ कि जिन मन्दिरों का प्रबंध उनके हाथ में आया उनका जीर्णोद्धार भी उन्होंने स्वयं कराया, प्रसिद्ध मंदिरों को फिर बनवाया तथा पुजारियों को वेतन भी दिये* इस तरह उपासकों के मन को अपने वश में किया। मुसलमान आक्रमणकारियों ने जो मन्दिर तोड़े वे फिर बना लिये गये। यद्यपि पुस्तकें जला दी गयीं तथापि पुस्तक रचना की शक्ति नष्ट न हो सकी। मुसलमानों की विजय शरीर तक रही, वह हिन्दुओं के मन पर अब भी सभ्यता का स्थायी प्रभाव न डाल सके। परन्तु ईसाइयों की विजय मानसिक थी। उन्होंने अपना प्रचार शिक्षा द्वारा प्रेस और प्लेटफार्म के बल से किया। विद्यार्थियों के लिये पाठ्य-पुस्तकें बनाकर साहित्य के बल से अपना प्रभाव जमाया। कालिदास, हेमचंद्र और कबीर का स्थान शेक्स-पियर, मिल और मिल्टन ने ले लिया। भारतवर्ष की सभ्यता

---

* Modern Religious Movement in India by Farquhar P. 9.

को ईसाई धर्मानुयायियों ने मुसलमानों से अधिक नुकसान पहुंचाया। पाश्चात्य सभ्यता की लहर बिजली की तरह उठी और उसकी पहिली ही चमक से अंगरेजी पढ़े लिखे युवकों की आंखें चुंधिया गईं। वे अपने धर्म के गुणों को भूलकर धड़ाधड़ ईसाई होने लगे। भारतवर्ष में एक बार फिर धार्मिक क्रांति हुई और धार्मिक नेता अपने अपने समाज की रक्षा के लिये कटिवद्ध हो गये। ज्ञान का प्रकाश हुआ और शिक्षा की उन्नति के साथ ही देश में सुधार की लहर पैदा हुई। प्रथम बंगाल में जहां ईसाई धर्म अंगरेजी शिक्षित युवकों में तेजी से फैल रहा था वहां राजा राम मोहनराय के मन में हिन्दू धर्म की रक्षा का विचार उत्पन्न हुआ। वे स्वयं सुशिक्षित थे और ईसाई धर्म की सभ्यता से परिचित थे। वैदिकधर्म से सहानुभूति रखते हुए हिन्दू समाज की निर्वलताओं को जानते थे। हिन्दू समाज के सुधार के लिये राजा राममोहनराय ने ब्राह्म समाज की नींव डाली। राजा साहिब का उद्देश्य पूर्वीय और पाश्चात्य सभ्यता का संमिलन था। इसीलिये ब्राह्म समाज के नियमों में ईसाई धर्म की झलक दिखायी देती है।

राजा राममोहनराय के पश्चात् स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक धर्म का डंका वजाया और लोगों को मोह निद्रा से जगाया। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन चलाया और मैडम ब्लावटिस्की ने थियोसाफिकल सोसायटी की नींव डाली। और भी वहुत से महात्माओं ने अपने अपने समाज को दृढ वनाने का भार उठाया। यद्यपि विविध धर्मों

के अनुयायी अपने अपने धर्म के प्रचार में लगे हुए थे तथापि जैनों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। धार्मिक स्वतन्त्रता के युग में भी जैनों ने अपने असंख्य शास्त्रों को भूगर्भ भण्डार से न निकाला था। जैन समाज मिट रहा था। इसका जीवन खतरे में था। रीति रिवाज का सुधार अत्यंत कठिन था। मन्दिरों की दशा शोचनीय थी। धर्मकर्म शास्त्रों के अनुकूल न था। लोग अपने बनाये मार्ग पर चल रहे थे। यति लोग भोगविलास में मग्न थे। धर्मोपदेश के अभाव से जैन समाज अन्धकूप में पड़ा था। यद्यपि भारतवर्ष में उन्नति की लहर दौड़ रही थी, जैन जाति गाढ़ निद्रा में विलीन थी। हिन्दुओं को धर्म से पतित करने के लिये ईसाई मूर्तिपूजा का ज़ोर से खण्डन कर रहे थे। वे हिन्दू देवी देवताओं की निन्दा करते थे और भारतीय सभ्यता की हंसी उड़ाते थे। पश्चिम की ओर से मूर्तिपूजा के विरोध में एक प्रबलशक्ति जागृत हुई जिससे इसी देश में उपदेशक पैदा हुए जिन्होंने ईसाई धर्म प्रचारकों का अनुकरण करते हुए मूर्तिपूजा के विरुद्ध आन्दोलन किया और मन्द बुद्धि के कारण मूर्तिपूजा का महत्त्व न समझ सके और सन्देह मात्र से ही इस प्राचीन पूजन पद्धति को छोड़ बैठे। इस अज्ञानान्धकार के नाश के लिये पंजाब में एक महान् आत्मा का आविर्भाव हुआ जिसने मूर्तिपूजा का गौरव विस्तार से वर्णित किया और जैन धर्म की उन्नति की।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब में अधिक धार्मिक क्रान्ति हुई। सच तो यह है कि

पंजाबी लोग ही इस ढांचे के हैं कि वह एक धर्म को छोड़ दूसरे में प्रवेश करने को तय्यार रहते हैं। कोई नवीन विचार पैदा हो उसके अनुयायी पंजाब में थोड़ी बहुत संख्या में मिल ही जावेंगे। सिक्खधर्म पंजाब में ही उत्पन्न हुआ। ब्राह्म-समाज का वृक्ष पंजाब में फूल फल रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सफलतापूर्वक आर्यसमाज की नींव पंजाब में ही डाली। राधास्वामी, देवसमाजी आदि मत पंजाब में ही पाये जाते हैं। स्वामी दयानन्द की तरह इन मतों के नेता बाहर से पंजाब में आये और इसी क्षेत्र में उनके सिद्धान्तों का विशेष प्रचार हुआ। मुसलमानों का अहमदीपक्ष पंजाब के अन्तर्गत कादीयान में ही पैदा हुआ। इस समय न केवल ईसाई ही पंजाबी जैनियों को बहका रहे थे, किन्तु और भी कई एक धर्मों के उपदेशक यथाशक्ति लोगों को अपनी ओर खींच रहे थे। कई एक जैनी सिक्ख बन गये। बहुत से अपने आप को सनातनधर्मी कहने लगे। जो लोग जैनधर्म के नियमों का पालन न कर सके वे आर्यसमाज की ओर झुक पड़े। ऐसे समय जब कि जैनसमाज और जैनियों की सभ्यता पर आक्रमण हो रहे थे, जैनसमाज में ज्ञान का सूर्य अस्त हो चुका था और सर्वत्र अज्ञानान्धकार छा गया था, ऐसे विषम काल में एक प्रभावशाली व्यक्ति का प्रगट होना आवश्यक था जो अपने ज्ञानबल से सोये हुए जैनसमाज को जगा कर कर्त्तव्यपालन का मार्ग दिखाता। विरोधियों के युक्तिशून्य दोषारोपण की निर्हेतुता दिखा कर भारतवर्ष में जैनधर्म का डंका बजाता, मूर्तिपूजा के विरुद्ध विचारों को

परिवर्तित कर देता। जैनाचार्यों की चमकती हुई मणि माला में एक अमूल्य रत्न मुनियों का सरदार श्रीमाद्विजयानन्द सूरि स्वामी आत्माराम महाराज प्रगट हुए जिन्होंने अंधकार विनाशक उज्ज्वल प्रकाश से लोगों के हृदय को आलोकित करने के लिये जैन समाज की सेवा में अपना बहुमूल्य जीवन अर्पित कर दिया। इस क्रान्तिप्रिय महान् प्रतापी बालब्रह्मचारी जैनाचार्य ने मृतप्राय जैनसमाज में नवीन जीवन का संचार कर के एक नई ज्योति जगा दी।

कुल, जन्म और बाल्यावस्था

विक्रम संवत् १८९३ चैत्रशुदि प्रतिपदा के शुभ दिवस क्षत्रियवीर श्रीमान् गणेशचंद्र जी कपूर के गृह में एक महान् क्रान्तिकारी व्यक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसने पवित्र धर्म की शरण लेकर सत्य धर्म के प्रचार में अपना जीवन समर्पित कर दिया। उस महान् व्यक्ति के प्रताप से जन्मस्थान लहरा की भूमि प्राणिमात्र के लिये उज्ज्वल हो गयी। गणेशचंद्र ने अपने सुपुत्र का नाम आत्माराम रक्खा। गणेशचंद्र महाराजा रणजीतसिंह की सेना में एक उच्च अधिकारी थे और उन्होंने तलवार के बल से अपने को विजयी सैनिक सिद्ध किया था। उसी तरह आपने अहिंसा के शस्त्र से अत्याचार मूढता आदि का विध्वँस कर जैनधर्म का वास्तविक मन्तव्य भगवान् महावीर की प्रकाशित वाणी "अहिंसा परमो धर्मः" का डंका जगत् में बजाया था। आप की आकृति अतीव सुन्दर थी। ऊँचाई में छः फुट से अधिक, मस्तक चौड़ा, शरीर सुडोल और दाहिनी आँख के अधोभाग

में एक चिह्न था। लहरागांव के क्षेत्र में सोढी अत्तरसिंह ने, जो कि एक प्रसिद्ध महन्त थे और ज्योतिर्विद्या में निपुण थे, बालक को देखकर भविष्यद्वाणी की कि यह लड़का राजा होगा या राजाओं का गुरु।

श्री आचार्य जी की माता जी का नाम श्रीमती रूपदेवी था जो पतिव्रता धर्म की मूर्ति और अत्यन्त सुन्दर थीं। नेत्रों से लज्जा और धर्म स्नेह झलकता था। पतिदेव की सेवा को परमभक्ति समझती थीं।

गणेशचन्द्र हंसमुख मिलनसार और दृढ़काय जवान थे। आप के पूर्वज पिंडदादनखान के पास कलश ग्राम में रहते थे। आप रामनगर के पास कसवा फालिया में थानेदार थे। धीरे धीरे महाराजा रणजीतसिंह की सेना में उच्चपद के अधिकारी हो गये और रणजीतसिंह की आज्ञा से हरि के पत्तन पर जहां सतलुज और व्यास का संगम है एक हजार सैनिकों के साथ नियत हुए। नौकरी के समाप्त होने पर आप स्थान की सुन्दरता से मुग्ध होकर यहीं रहने लगे। राजकुंवर ठेकेदार महाराजा की तरफ से हरिके पत्तन पर नियुक्त थे और वे प्रायः लहरा और जीरा में जाया करते थे। उनके सम्बन्ध से समय के परिवर्तन होने के कारण आप लहरा में रहने लगे और जीरा में जोधामल जी ओसवाल से आप की मैत्री हो गयी। जोधामल जी प्रायः लहरा जाया करते थे और बालक आत्माराम को गोद में लेकर बहुत समय तक खिलाते थे। सोढी अत्तरसिंह जी भी लहरा आया करते थे, अनपत्य और स्नेह के कारण आत्माराम को

अपना सर्वाधिकारी बनाना चाहते थे परन्तु गणेशचन्द्र ने इसे स्वीकृत न किया। गणेशचन्द्र का अभिप्राय अपने पुत्र को शूरवीर सैनिक बनाने का था, इसलिये बालक को अपनी युद्ध सम्बन्धी कथाएं सुनाया करते थे और राजा रणजीतसिंह की शूरता और सिक्खों के साहस पूर्ण पराक्रमों का वर्णन किया करते थे जिससे आपके हृदय पर निर्भयता और वीरता का प्रभाव पड़ा, जिसका उदाहरण बाल्यावस्था की एक क्रान्तिसूचक घटना है। उन दिनों लूट मार की प्रवृत्ति सामान्य थी। लोगों को अपनी रक्षा स्वयं करनी पड़ती थी। एक बार लहरा में डाका पड़ा। लोग मुकाबला के लिये एकत्रित हो गये। गणेशचंद्र जी शस्त्र ले घटनास्थल पर कूद पड़े। यह देख डाकू भाग गये। जब गणेशचंद्र घर लौटे तो बालक आत्माराम को तलवार खैंचे हुए द्वार पर खड़े देखकर विस्मित हुए। आपने लाड़ले पुत्र को छाती से लगाकर उसके धैर्य का कारण पूछा तो आप ने आदर से उत्तर दिया कि मैं घर की रक्षा के लिये कटिबद्ध खड़ा था। पिता ने कहा भला तू डाकुओं का सामना किस तरह कर सकता था तो आपने निर्भयता से उत्तर दिया कि यदि आप घर से बाहर डाकुओं का मुकाबला कर सकते हैं तो क्या मैं अपने घर की रक्षा भी नहीं कर सकता। इस घटना से गणेशचंद्र को निश्चय हो गया कि मेरा पुत्र अवश्य ही वीर पुरुष बनेगा।

सोढी अत्तरसिंह गणेशचंद्र के रूखे जवाब से नाराज तो हो ही चुके थे, इसलिए सम्पत्ति और अधिकार के बल

से गणेशचंद्र को कैद करना चाहते थे। गणेशचंद्र को भी जब मालूम हुआ तो वे अपने प्रिय पुत्र आत्माराम को अपने मित्र जोधेशाह के घर लाये और अपनी आंखों के तारे और जीवन के सहारे आत्माराम को जोधेशाह के सुपुर्द कर के अश्रुपूर्ण नयनों से बोले कि मैं जीवन में आत्माराम को सैनिक कला में निपुण करना चाहता था, परन्तु शोक है कि मैं ऐसा न कर सका। मेरे हृदय में यही इच्छा है। मुझे आशा है कि मेरी अनुपस्थिति में आप आत्माराम की शक्ति का अनुमान लगाकर उसके विकास में यथोचित सहायता देंगे। मेरा हृदय साक्षी है कि मेरा पुत्र आकाश में सूर्य के सदृश चमकेगा। अपने धर्म मित्र के हृदय से निकले शब्दों से प्रभावित होकर जोधेशाह दुःखी हुए और आत्माराम को गोद में लेकर गणेशचंद्र से कहने लगे। तुम जानते हो मुझे आत्माराम से कितना स्नेह है। आज मैं उसे धर्मपुत्र बनाता हूं। उसके पालन पोषण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता हूं। जो सुख सुविधाएं मेरे बच्चों को मिलेंगी वे आत्माराम को भी अवश्य मिलेंगी। लिखा पढ़ा कर उसका विवाह करूंगा और आजीविका कमाने के योग्य बना दूंगा। आपके वियोग से मेरा दिल दुःखित है परन्तु आपकी अमानत मुझे धीर बनायेगी और मैं आत्माराम के पालन पोषण से मित्रता का कर्तव्य पालन करूंगा।

विक्रम संवत् १९०६ से आत्माराम अपने धर्मपिता जोधेशाह के घर रहने लगे। एक क्षत्रिय वीर के लिये जैनगृह में रहना और एक कुटुम्ब का अङ्ग बनना नूतन विचार

धारण करना था। आत्माराम को जैनधर्म से संवद्ध होने का पहला अवसर मिला। जीवदया साधुओं का त्याग और कठिन तपश्चर्या का आदर्श सन्मुख रहने से उन की काया पलट गयी। इस समय आपकी आयु बारह वर्ष की थी। पिता के विरह से शोक होना स्वाभाविक था। परंतु जोधेशाह के स्नेह और प्रेम ने शोक को भुला दिया। थोड़े ही समय में आप जोधेशाह के पुत्रों से हिलमिल गये और अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण अपने खिलाड़ी मित्रों के नायक बन गये।

उस समय ब्रिटिश साम्राज्य का अभी आरम्भ ही हुआ था। शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की व्यवस्था न हुई थी। जीरा जैसे गाँव में शिक्षा का क्या प्रबन्ध हो सकता था। पन्द्रह सोलह वर्ष के नवयुवक दिन भर खेलते कूदते थे। वे तन्दुरुस्त, ऊँचे कद वाले और मज़बूत होते थे। क्या विचित्र समय था। विकट संग्राम, लूटमार, हत्या और घोर अत्याचार के पश्चात् सुख और शान्ति के दिन देखने नसीब हुए थे। ब्रिटिश साम्राज्य का सिक्का जम चुका था और प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता से घूम सकता था। वर्त्तमान काल की चिन्ताओं ने अभी डेरा न डाला था। मनुष्यों का जीवन सादा था और आवश्यकतायें अति अल्प थीं। खाने पीने को दूध घी खूब मिलता था। मित्र मण्डली भ्रमण के लिये कोसों निकल जाती थी। वह दिन भर का खेलना, कूदना, उछलना और दौड़ना खूब आनन्ददायक था। यही चर्या आत्माराम जी की बाल्यावस्था की थी। आप बहुत

अच्छे घुड़सवार थे। तैरने का शौक बहुत था। जीरा के बाहर नदी पर चले जाते थे और खूब नहाते तैरते और डुबकी लगाते थे। एक बार वर्षा ऋतु में मुसलाधार वर्षा के कारण बाढ़ आ गई। आत्माराम जी अपने सखाओं के साथ नदी का दृश्य देखने गये थे। पानी जोर का था। इधर उधर लहरें उठकर अठखेलियां कर रही थीं। लड़के पानी की सतह पर कंकर तैराकर अपने कौशल का प्रमाण दे रहे थे। उनके देखते ही एक मुसलमान स्त्री मुंह हाथ धोने के लिये वहां आयी और उसने अपने छोटे बच्चे को नहला कर किनारे पर बैठा दिया। वह स्वयं मुंह हाथ धोने लगी। बच्चा खेलता खेलता पानी में गिर गया। माता बेचारी ममता की मारी बच्चे को पकड़ने के लिये पानी में उतरी परन्तु पग फिसल गया और बच्चे समेत गहरे गढ़े में गिर गई। माता और पुत्र दोनों गोते खाने लगे। यह देखते ही आत्माराम नदी में कूदे और दोनों को सुरक्षित निकाल लाये जिस से नगर के स्त्री पुरुष सब उनके धैर्य और साहस की प्रशंसा करने लगे। कबड्डी, खुदोखूंडी, लक्ष्यवेध, कुश्ती दंडा और कलाई पकड़ना यह इनका दैनिक कृत्य था। कृत्रिमयुद्ध आत्माराम जी का विशेष कौतुक था। वह अपने साथी बालकों को सैनिक श्रेणियों में विभक्त कर स्वयं नायक नियत करते थे, एक श्रेणी के नायक स्वयं बनकर युद्धकला का कौतुक वैश्यपुत्रों को सिखाते थे। वसन्त ऋतु में मित्रों के साथ बाहर खेतों में निकल जाते थे, चारों ओर हरि-याली देखते और प्रकृति का आनन्द उठाते थे। जब आसमान

से छोटी २ बून्दे गिरती थीं, तब चहचहाते परिन्दों और प्राकृतिक दृश्यों का अनुभव करने के लिये बाहिर घूमा करते थे। वह आनन्द भरा ज़माना था। जब आत्माराम जी जीरा में आये उस समय फेरू शहर और मुदकी की लड़ाईयां जो सिक्खों और अंगरेजों में लड़ी गयीं समाप्त ही हुई थीं अंगरेजी सेनायें जीरा से गुजरती थीं, सिपाहियों के कन्धों पर बन्दूकें होती थीं उन्हें देख देखकर आप फौजों की नकल उतारने में बहुत दिलचस्पी लेतेथे। यहां तक कि आपने ऐसी सुन्दर तसवीरें तैय्यार कीं। जिन में अंगरेजी सेनापति सिक्खों और अंगरेजों का युद्ध, घोड़े और आदमी दौड़ते हुए और एक दूसरे पर वार करते हुए दिखाये। बचपन से ही चित्रकला का कमाल शौक था। चित्र बनाने की स्वाभाविक रुचि थी। थोड़े समय में ऐसी मनोहर तसवीरें बना देते थे कि देखने वाला आश्चर्य मानता।

एक दिन का जिकर है कि आत्माराम जी अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। खेलते खेलते आपने घर का नकशा बनाया उस में लाला जोधेशाह तथा उनके कुटुम्ब के चित्र बनाये इतने में धर्मपिता जोधेशाह भी आ पहुंचे। चित्र को देखकर आश्चर्य चकित हुए और लड़कों से पूछा कि यह चित्र किसने बनाया है ? सभी ने एक आवाज से कहा-कि यह चित्र सब के देखते ही देखते आत्माराम ने बनाया है। ताश का खेल उन दिनों गांव में नया ही आरम्भ हुआ था। आत्माराम जी ने एक ताश को देखकर वैसा ही ताश तैयार कर लिया और अपने साथियों के साथ खेलने लगे। इस

अवसर पर एक अंगरेजी सेना पास से गुजरी। किले से एक सैनिक लड़कों के पास आया और कीमत देकर ताश माँगने लगा। लड़कों ने अपनी खेल की वस्तु वेचने से इन्कार कर दिया। आत्माराम जी के डील डौल और चमकते हुए चेहरे को देखकर आप को संबोधित करके ताश के लिये सैनिक ने फिर प्रार्थना की। इस पर आपने ताश विना मूल्य के उसे दे दी और साथियों से प्रण किया कि आप उन्हें वैसा ही एक और ताश वना देंगे। यह मालूम करके कि ताश आत्माराम जी की अपनी वनायी हुई है सैनिक को वहुत विस्मय हुआ। उसने सव वृत्तान्त अपने अध्यक्ष से कहा, जो सुनकर वहुत प्रसन्न हुआ और आपको धर्मपिता के साथ अपने पास वुलवा कर इनाम दिया। आप को सतरंज का वहुत शौक था और अच्छे खिलाड़ी समझे जाते थे।

वाल्यावस्था की एक और खूवी जो आपके जीवन का शृङ्गार रही और जिस खूवी के कारण आप सर्वप्रिय और साथियों में नायक समझे जाते थे। वह था आप का सत्यव्रत। आप कभी झूठ नहीं वोलते थे। वहुत से लड़के थोड़ी २ वात पर झूठ वोल देते हैं। उन्हें कई वार लज्जित होना पड़ता है उनका विश्वास उठ जाता है, जिम्मेवारी के काम के अयोग्य गिने जाते हैं। आप की सत्यता लोक प्रसिद्ध थी। पता लगाने पर आप हर एक वात यथार्थ कह देते थे। कोई लोभ या लेहाज आप को झूठ वोलने के लिये प्रभावित नहीं कर सकता था। जव खेल कूद में लड़के आपस में लड़

झगड़ पड़ते थे और अपने घर में जाकर अपने कुटुम्बियों से शिकायत करते थे उस समय यथार्थ बात आप से ही दरयाफत की जाती थी। कुच्छ ऐसी घटनायें हुई जिनमें इस सत्यता के पुत्तले ने अपने धर्म भाईयों और मित्रों की रियायत करने से साफ इनकार कर दिया। आप में शराफत कूट २ कर भरी थी। कदापि किसी से कठोर वचन नहीं बोलते थे। जब कभी दूसरे लड़के आप को गाली देते तब आप यह कह कर 'तेरी गाली तेरे मुंह विच' चुपके हो जाते थे।

लाला जोधेशाह के दिल में आप के पिता लाला गणेशचन्द्र के लिये बहुत आदर और सन्मान था। आप अपने सच्चे मित्र की अन्तिम अभिलाषा को कभी न भूल सकते थे। उनकी हार्दिक इच्छा आत्माराम जी को हिन्दी महाजनी सिखला कर दुकान के काम में निपुण करने की थी। इसीलिये वह स्वयं आत्माराम जी को हिन्दी महाजनी और व्यापार के उपाय सिखलाया करते थे।

वैराग्यभाव, दीक्षा और ज्ञान प्राप्ति

आत्माराम जी के धर्मपिता जोधेशाह जी सत्यवादी श्रद्धालु दयालु और सत्संगी थे। स्थानकवासी जैन साधुओं के पास सामाजिक संध्या तथा धर्म ध्यान के लिये प्रतिदिन जाया करते थे। यदि कुटुम्ब का स्वामी धार्मिक कार्य्यों में अग्रसर भाग लेता हो तो सारा कुटुम्ब उसका अनुसरण करता है। अपने धर्मपिता की साधुओं से प्रीति का अनुभव कर के आप ने भी उनके पास जाना आरम्भ कर दिया।

ज्ञान प्राप्ति के लिये आपकी तीक्ष्ण अभिलाषा थी। साधुओं से हिन्दी भाषा पढ़ने लगे और उन से जैनधर्म का परिचय लेने लगे। थोड़े ही समय में सामायिक तथा प्रतिक्रमण सीख लिया। धीरे धीरे आपकी रुचि खेल कूद से हटकर स्वाध्याय की ओर बढ़ी। ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा प्रतिदिन तीक्ष्ण होती गयी। आप उपाश्रय में देर तक साधुओं के पास बैठते और उनकी बातें सुना करते थे। त्यागी साधु आप को गृहस्थियों से निराले मालूम दिये।

विक्रम संवत् १९१० को महाराज जीवणराम जी का चतुर्मास* जीरा में हुआ। आत्माराम जी प्रायः उनके पास आया करते थे। जीवणराम जी संसार की असारता और साधुधर्म के महत्त्व पर व्याख्यान दिया करते थे। धीरे २ आप को जैन साधु की दीक्षा ग्रहण करने का उपदेश मिलने लगा जिस से आप के मन में वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। जीवणराम जी ने आप को बताया कि मनुष्य जीवन अमूल्य वस्तु है। धर्मध्यान में उद्यम करना अत्यावश्यक है, संसार असार है, जगत् में कोई वस्तु स्थिर नहीं, जीवन का कुछ विश्वास नहीं, भोग-विलास क्षणिक है, मित्र और संबन्धि केवल इस जीवन में ही सहायक हो सकते हैं। धर्म ही ऐसी शक्ति है जो आत्मा को बलवान कर सकती है और निर्वाणपद दिला सकती है। यह संसार दुःखों का घर है, सांसारिक पद और अधिकार सच्चा सुख नहीं दे सकते।

---

* चतुर्मास = वर्षाऋतु में जैन साधु चार महीने एक ही स्थान पर निवास करते हैं।

इस तरह वैराग्यभाव उत्पन्न करने के लिये संसार की भीषण दशा दिखलायी कि कठोर से कठोर हृदय भी संसार को छोड़ने के लिये उत्सुक हो उठे। आत्माराम जी के लिये यह नवीन विचार थे। आप जगत् को एक अति सुन्दर सुख का स्थान समझे बैठे थे, स्वयं लाड़ से पले थे, मातापिता के प्रेमपात्र बने थे और अपना समय सुख और आनन्द में व्यतीत किया था। साधुओं के विचार आप के पिता के विचारों के विरुद्ध थे वह संसार को संग्राम क्षेत्र समझते थे। उनके लिये युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त करना ही मनुष्य का उच्च धर्म था। सांसारिक आपत्तियों से भयभीत होकर उसे त्याग देना आप कायरता समझते थे। पिता के विचारों को सन्मुख रखते हुए आप दीक्षा ग्रहण करने के लिये तैय्यार न थे, परन्तु धीरे २ आपकी रुचि इस ओर बढ़ती गयी। जीवन राम जी ने आप को ऐतिहासिक उदाहरण सुनाये। प्रथम तीर्थंकर आदीश्वर भगवान् और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी जी क्षत्रिय पुत्र थे जिन्होंने राज्य को लात मार कर कर्म्मों से युद्ध करके विजय प्राप्त की और संसार को सत्य और अहिंसा की शिक्षा देकर मोक्ष प्राप्त किया। सांसारिक जीव विषय कषायों में फंसकर धर्महीन हो जाता है। धीरे २ साधुधर्म का महत्त्व आप के हृदय में विकसित होने लगा। आप सोचने लगे कि मनुष्य गृहस्थ धर्म में रहता हुआ प्राणिमात्र की सेवा कर सकता है परंतु साधुधर्म में अवसर अधिक है। संसार से विरक्त होकर ज्ञान प्राप्ति भी भली प्रकार हो सकती है। वैराग्य भाव ने

आप के जीवन का उद्देश्य बदल दिया आपने खेल कूद बंद कर दिया। मित्र बुलाने को आते, और उन्हें गहरे विचार में दखकर विस्मित रह जाते। जहां आप स्वयं लड़कों को बुलाकर साथ घूमने जाया करते थे वहां आप अकेले ही जाने लगे। आप के विचारों में परिवर्त्तन हो चुका था। आप के धर्मपिता को आप के हृदय का वृत्त मालूम न था। वह आत्माराम को उदासीन देखकर उसके मित्रों से कारण पूछते थे परन्तु किसी को कुछ मालूम न था केवल जीवन राम जी ही इस रहस्य से परिचित थे। आप बहुत देर एकान्त में बैठ कर विचारा करते थे कि गृहस्थधर्म उत्तम है या साधुधर्म। अन्त में आप ने साधु बनने का निश्चय कर लिया। प्रथम ही आप ने दीक्षा धारण करने के भाव को मित्रों से प्रगट किया और उनकी सहमति चाही। सब मित्रों ने विरोध किया और वैराग्यभाव का कारण माता पिता का वियोग समझा। आत्माराम जी ने साफ २ कह दिया कि उसे धर्मपिता के होते हुए पिता के वियोग का किंचिन्मात्र दुःख नहीं। वह दीक्षा लेने का निश्चय कर चुका है और सत्यता की प्राप्ति के लिये उत्कण्ठित है। ज्यों ही यह सूचना आप के धर्मपिता को मिली उन्हों ने आप को बुलाकर समझाना शुरू किया और साधुधर्म के कष्ट बताकर आत्माराम को अपरिपक्व विचार छोड़ देने का उपदेश दिया। धर्मपिता का विचार था कि किसी ने बालक को साधु बनने के लिये उभार दिया है। इसलिये वह विचारशून्य मन से साधु बनने का निश्चय कर रहा है।

जब आपकी माता को यह सूचना मिली तो वह अपने पुत्र को समझाने के लिये जीरा पधारी। परन्तु उसका प्रयत्न व्यर्थ हुआ। दो महीने जीरा में रहीं परन्तु पुत्र के विचारों को बदल न सकीं। आप की वैराग्यता का ज्ञान सब स्त्री पुरुष वृद्ध और बालक को हो चुका था परन्तु जनता का विचार यह था कि साधुओं के जीरा से विहार करते ही आप के विचार वायु की भान्ति अस्तव्यस्त हो जायेंगे, और पहिले की तरह घरेलू काम काज में लग जावेंगे वरन् आपका निश्चय अटल था आप अपना जीवन सेवा के लिये अर्पण कर चुके थे।

साधुओं के चतुर्मास समाप्त होने पर विहार से कुछ दिन पहिले अत्यन्त आदर और सत्कार से माताश्री के चरणों पर सिर रखकर साधु बनने की आज्ञा चाही, भला मातृ प्रेम यह कब सहन कर सकता था कि लाडला पुत्र पात्र हाथ में लेकर दर २ ठोकरें खाये और नाना प्रकार के क्लेश और संकट का शिकार हो। माता ने यह बात स्वीकार न की और रोते हुए कहा कि बच्चा साधु बनकर मुझे दुखी न करो, मैं कई दिनों से तुझे समझा रही हूं। जीरा आने का मेरा उद्देश्य यही है, कि मैं तुम को इस अपरिपक्व विचार से हटाये रक्खूं।

माता—तूं आखिर किस कारण साधु बनने को तय्यार हुआ है ?

आत्माराम—यह संसार असार है, सांसारिक वस्तु सुखदायक नहीं, विषयकषाय मनुष्य को फंसाये रखते हैं।

जीवन क्षणिक है जितना पुण्य उपार्जन किया जाय उतना ही भला है। मैं संसार के धन्धों में फंसा रहना नहीं चाहता। धर्म ही जीव का परम मित्र है इसलिये माता जी! मुझे प्रसन्नता से आज्ञा दें, ताकि मैं अपना जन्म सफल कर सकूं।

रूपादेवी माता की आंखों से अश्रुधारा बह रही थी। होनहार पुत्र का संयम धारण करने का विचार उसके लिये दुःखदायी था। नरमी और दिलासा से काम बनता न देख कर आप ने अपने पुत्र को ललकारा और कुलमर्यादा का ध्यान दिलाते हुए कहा। बेटा! याद रख तूं एक क्षत्रिय वीर का पुत्र है, क्षत्रिय तो अपना जीवन संग्राम में व्यतीत कर विजय प्राप्त करता है और अपनी वीरता की शान बढ़ाता है तूं क्षत्रिय होता हुआ संसार से भय खाता है,। तेरे शरीर पर कवच और हाथ में तलवार सजती है नकि भिक्षा पात्र। आह बेटा! माता की शिक्षा स्वीकार कर अपने विचारों को छोड़ दे। प्यारी माता के हृदय से निकले हुए वचनों को आपने ध्यान देकर सुना और नम्रता से उत्तर दिया।

आत्माराम—माता जी मैं क्षत्रिय हूं, क्षत्रिय रहूंगा। क्षमा और सचाई के शस्त्र हाथ में लेकर पाप और बुराई के मुकाबले में डट जाऊंगा। मैं वचन देता हूं कि अपना जीवन संसार की सेवा के लिये समर्पण करूंगा। झूठ का नाश करूंगा और अहिंसा धर्म के प्रचार से प्राणिमात्र का भला करूंगा। आप मुझे आशीर्वाद दें ताकि मैं अपने उद्देश्य में सफल होऊं। विवश होकर माता जी ने आंसु भरी आंखों

से कहा बेटा ! तेरा पिता तुझे जोधेशाह के सपुर्द कर गया था इसलिये जा अपने धर्म पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त कर। इसके अनन्तर आप धर्मपिता के पास गये और अपना दीक्षा लेने का निश्चय प्रगट किया। जोधेशाह ने धर्मपुत्र को कहा बेटा ! मैंने तेरा पालन पोषण अपने पुत्रों से भी अधिक ध्यान देकर किया है। तू अब बालक नहीं युवा अवस्था को पहुंच चुका है। थोड़े ही समय में तेरा विवाह करूंगा और तुझे अपनी सम्पत्ति का अपने पुत्रों के बराबर भाग दूंगा। तेरे दीक्षा धारण करने से मेरी बदनामी होगी। लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे कि मित्र ने शिक्षण के लिये बेटे को सपुर्द किया परन्तु बालक को तंग करके साधु बनने को विवश किया। यह कहते हुए लाला जोधेशाह ने आत्माराम को अपनी छाती से लगा लिया और जोर जोर से रोने लगे। आत्माराम भी यह हालत देखकर आंसु भर लाये, थोड़ी देर संभल कर विनती की। पिता जी मैं आप की भलाई कभी भूल नहीं सकता, आप ने जो प्रेम मेरे प्रति प्रगट किया है उसे लोग भूले हुए नहीं। आप सदा मेरी भलाई में तत्पर रहे। पिता जी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया। मैं व्यापारी बनना नहीं चाहता। विवाह मेरे लिये आकर्षण नहीं रखता। मैं ब्रह्मचर्य व्रत को पालन करने का निश्चय कर चुका हूं। कृपा कर के मुझे दीक्षा की आज्ञा दें। जोधेशाह ने कहा बेटा ! साधुओं का मार्ग कठिन है, तुझ से आपत्तियें सहन न होंगी। जैन साधु का जीवन तप और संयम का जीवन है। पृथिवी पर सोना,

रात्रिमें न खाना न पीना, नंगे पांव चलना, भिक्षा मांग कर खाना, कौड़ी तक पास न रखना, यह तुझ से न बन सकेगा। आत्माराम ने सविनय उत्तर दिया यह सब बातें मैं प्रसन्नता से सहन करूंगा। आप अनुभव करेंगे कि मैं किस प्रकार इन का मुकाबला करके साधुधर्म का पालन करता हूं। मैं क्षत्रिय पुत्र हूं। कोई आपदा मुझे भयभीत नहीं कर सकती। कोई कष्ट मुझे अपने निश्चय से हटा नहीं सकता। संक्षेपतः जोधेशाह ने आत्माराम के विचारों को गम्भीरता से प्रभावित होकर अपने मानसिक विचारों को दबाकर उसे दीक्षा की आज्ञा दे दी और कहा—बेटा! चिरंजीव रहो। साधु धर्म का पालन करते हुए जैनधर्म के प्रचार में अपना जीवन अर्पण कर दो। जाओ संसार में अपना नाम प्रसिद्ध करो। एक सच्चे हितैषी की दिल से निकली हुई प्रार्थना ने वह असर दिखलाया जो किसी के विचार में भी न था। साधुओं के विहार का समय निकट आया। आत्माराम प्रसन्नता से इधर उधर मित्रों से विदा हो रहा था। इस तरह साधुओं के साथ जीरा से चतुर्मास समाप्त होने पर चल पड़े और अपनी माता को आश्वासन दिलाते हुए कहा 'भारतवर्ष में ऐसी भी मातायें हुई हैं जिन्हों ने अपने हाथों से अपने लड़कों को दीक्षा दिलायी। इसलिये घर जाकर शान्ति का जीवन व्यतीत करो और मेरे लिये प्रार्थना करो कि 'मैं धर्म और जाति की सेवा में अपना जीवन सफल कर सकूं।'

आपकी दीक्षा माघशुदि पञ्चमी विक्रम संवत् १९१० को मालेरकोटला में हुई जैन साधुका दीक्षा महोत्सव एक अद्भुत

दृश्य है। दीक्षा लेने वाला धनी हो या निर्धन, वृद्ध हो या युवा दीक्षा से पूर्व आदर और सन्मान का पात्र बनता है। स्वादिष्ट भोजन बहुमूल्य वस्त्रों से उसकी सेवा की जाती है। परन्तु इन वस्तुओं से वह अपनी घृणा दिखलाता है। निश्चित तिथि को धूमधाम से उसका प्रोसेशन निकाला जाता है और नगर कीर्त्तन से उसका सन्मान किया जाता है, मानो वह एक युवराज हो। जलूसकी समाप्ति पर दीक्षा का अधिकारी वैराग्य भाव से त्यागी महात्माओं के सन्मुख प्रार्थना करता है, कि वह सांसारिक रंगरलियों से उदासीन है। भोग विलासकी वस्तु हानिकारक समझता हुआ उनसे पृथक् होकर संयम धारण करना चाहता है ताकि वह अपने कर्मरूपी शत्रुओं को तप और ज्ञान बल से मिटाकर मोक्षको प्राप्त करे। प्रार्थना को सुनकर गुरु उसे साधु धर्म के लाभ हानि का परिचय देता है और साधुओं के पांच महाव्रत उसे सुनाकर पूछता है कि क्या वह दृढ रह कर संयम पालन कर सकेगा? जब दीक्षा लेनेवाला विचार कर उत्तर देता है कि वह संसार को त्यागना चाहता है और कहता है कि उसे दीक्षा देकर कृतार्थ किया जाय, गुरु उसे दृढ़ देखकर सांसारिक वस्त्र उतरवा देता है और वासक्षेप* डाल केश लुञ्चन कर साधुओं के वस्त्र पहना देता है। आत्माराम की दीक्षा पर भी यही दृश्य देखने में आया। अधिक संख्या में स्त्री और पुरुष निश्चित दिवस पर मालेरकोटला एकत्रित हुए। आत्माराम को बहुमूल्य वस्त्रों से विभूषित करके

* वासक्षेप = केसर कस्तूरी वगैरह का चंदन।

हाथी पर सवार किया गया। दीक्षा के समय आपकी आयु सत्रह वर्ष की थी। आपका कद लम्बा शरीर वलवान और मुख सुन्दर होने के कारण आपके देह पर दिव्य वस्त्र ऐसे सजे हुए थे कि हाथी पर बैठे हुए आप युवराज दिखलायी देते थे। वाजारों में आपकी सवारी जिधर जाती थी हजारों मनुष्य जमा हो जाते थे। मकानों की छत्तें औरतों और बच्चों से भरी हुई थीं। धीरे २ जयकारों के साथ प्रोसेशन मण्डप में पहुंचा जहां साधु वनाने की क्रिया विधि के अनुसार की गयी। आपको साधु धर्म के नियम समझाये गये और पांच महा व्रताकों* संक्षिप्त वर्णन सुनाया गया और संयम में दृढ रहने का उपदेश दिया गया। आप अत्यन्त प्रसन्न नजर आते थे। आपके मुख पर प्रकश था और आंखों से ज्योति झलक रही थी। आपके दिल में साधु वनने का प्रेम और सचाई प्राप्त करने का भाव विद्यमान था, आप सत्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित थे।

दीक्षा के पश्चात् आत्माराम ने अपनी संपूर्ण शक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिये लगा दी। थोड़े ही समय में आपको प्रतीत हो गया कि गुरु जीवनराम जी वहुत विद्वान् नहीं इसलिये आप ने जीवनराम जी से प्रार्थना की कि वह उसे अन्य जैन साधुओं से शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा देवे। पंजाव का साधुसङ्घ आप की अध्ययन रुचि सन्तुष्ट न कर सका। स्वाध्याय से आप को मालूम हुआ कि सत्मार्ग के अन्वेषण में उनका ज्ञान पर्याप्त नहीं। विद्या की खोज में आपने

* अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह।

सात वर्ष इधर उधर पंजाब और मारवाड़ में भ्रमण किया। जहां कहीं विद्वान् साधु की सूचना मिली वहीं पहुंचे और विद्या प्राप्ति के लिये प्रार्थना की, परन्तु आप के दिल का उमंग न भरा। हर किसी ने आप की तीक्ष्ण बुद्धि और स्मरणशक्ति की प्रशंसा की। जयपुर में पण्डित विद्यानाथ पटवा ने आप को व्याकरण के विशेष अभ्यास के लिये कहा। आपने व्याकरण में ही अपने को लगाया। जयपुर में आप अमीचंद जी महाराज से जैन सूत्र पढ़ा करते थे। जयपुर से चलकर रतलाम मगन जी स्वामी के पास अध्ययन के लिये आये और उन की सहायता से बत्तीस सूत्र पढ़ लिये जिस कारण अपने विभाग के जैन साधुओं में प्रसिद्ध हो गये। इसी तरह आगामी दो वर्ष जयपुर और रतलाम चतुर्मास करके महाराज अमीचंद जी और मगन जी स्वामी से शिक्षा प्राप्त की और दस हजार श्लोक कंठस्थ कर लिये। यद्यपि आप सूत्रों के ज्ञाता समझे जाते थे तथापि आप को सन्तोष न हुआ क्योंकि भिन्न २ साधुओं ने भिन्न २ अर्थ बताये थे। आप समझते थे कि सही अर्थ एक ही हो सकता है। टब्या अर्थ में आप को विशेष सन्देह था। कई स्थानों पर अक्षर हरताल से मिटा दिये गये थे। आप के तर्क करने पर बतलाया गया कि यह यतियों के प्रक्षिप्त वाक्य हैं। प्रतिदिन आप का सन्देह बढ़ता गया। आपने निश्चय कर लिया कि व्याकरण को अच्छी तरह पढ कर स्वयं सत्य और असत्य का निर्णय करेंगे। आप साधारण जैन साधुओं की भांति संकुचित विचार न रखते थे और तंग दायरे में

रहना ठीक नहीं समझते थे। आप सर्व प्रकार के मनुष्यों से वार्तालाप करके अपनी विचारशक्ति को उपयोग में लाना चाहते थे। आप को अभी तक यह ही मालूम था कि जैनों के पुस्तक भण्डार नष्ट हो चुके हैं और वतीस सूत्रों के विना कोई प्रामाणिक पुस्तक नहीं। जैनधर्म में मूर्त्तिपूज का निषेध है परन्तु आप को अपनी ज्ञानयात्रा में मारवाड़ के कई स्थानों में प्राचीन जैन मन्दिर देखने का अवसर मिला। मगन जी से विदा होकर आप रतलाम से चितौड़ आये। चितौड़गढ़ पांच सौ फुट ऊंचा एक पहाड़ी पर खड़ा है। भारतवर्ष में इस के मुकाविले पर और कोई गढ़ नहीं। इसकी ऊँची और मजवूत दिवारों और जंगी दरवाजों की वनावट को देखकर अकल हैरान रह जाती है। इस किला के साथ वह अद्भुत ऐतिहासिक घटनायें संवन्धित हैं जिन्हें पढ़कर कायर भी भीरुता छोड़ वलवान हो जाता है। वह कौन है जो चितौड़गढ़ को देखे और शेर दिल वहादुर राजपूतों के वल और पराक्रम के दृश्य को न स्मरण करे। रूपवती पद्मिनी का महल अव भी वहां मौजूद है। पुराने किला के अन्दर आप को महलों की जगह खण्डरात नजर आये। टूटी हुई इमारतें आप के लिये शिक्षाप्रद थीं। आपने प्राचीन जैन मन्दिरों के खण्डरात खूब ध्यान से देखे। एक विशाल मकान जयस्तम्भ के नाम से प्रसिद्ध है जिस के विषय में कहावत है कि उसे सन् ८९६ में जैनधर्मी महाराणा उल्लार ने वनवाया था और इस स्थान पर शान्तिनाथ भगवान् की मूर्ति विराजमान थी। शृङ्गार चमरी के स्थान पर

भी शान्तिनाथ भगवान् का मन्दिर था। एक और विशाल मन्दिर जो सातबीस देवोंके नाम से प्रसिद्ध था देखने में आया, यह सताई जैन मन्दिरों से मिलकर एक बड़ा मन्दिर बना हुआ नजर आता है। चित्तौड़गढ़ के किला में आप को जैन धर्म के प्राचीन महत्त्व का ज्ञान हुआ। जैमलफता, रानाकुम्भ के महल, महारानी पद्मिनी की सुरंग, सुकौशल मुनि की तप करने की गुफा, सूर्यकुण्ड और गौमुखी आदि स्थान देखकर आप संसार की अनित्यता पर विचार करने लगे। चितौड़ के किला में प्राचीन जैन मन्दिरों के खण्डरात को देखकर आप ने सोचा कि यह जैनधर्म में मूर्त्तिपूजा का प्रमाण है। सूत्रों के पाठ से भी आप के दिल में शङ्का पैदा हो चुकी थी इसलिये मूर्त्तिपूजा के प्रश्न का शीघ्र निर्णय करने का आपने निश्चय कर लिया।

दीक्षा के सात वर्ष अनन्तर वि० १९१९ का चतुर्मास आपने अपने ग्राम जीरा में किया। इस जगह आपने कई एक प्रामाणिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आवश्यकसूत्र, प्रथमानुयोग, उपासकदशाङ्ग, योगशास्त्रादि ग्रन्थों में आपने मूर्त्तिपूजा का वर्णन पढ़ा। आचाराङ्ग सूत्र की निर्युक्ति में तीर्थयात्रा का कथन देखा। मूर्तिपूजा के विषय में आप की शङ्का विश्वास में परिणत हो गयी। सत्य और असत्य का निर्णय आप के जीवन का लक्ष्य था। सात वर्ष पहले जिस स्थान पर दीक्षा धारण करने का निश्चय किया था उसी स्थान पर मूर्त्तिपूजन के अस्तित्व को प्रगट करने का भाव उत्पन्न हुआ। इसी नयी उमङ्ग को लेकर आप जीरा से

रवाना हुए और आगरा में वृद्ध विद्वान् साधु रत्नचंद जी की सेवा में उपस्थित हुए और अपने विचारों को उन के सन्मुख रक्खा। उन से विशेष ज्ञानप्राप्ति की इच्छा प्रगट की। रत्नचंद जी ने एक वर्ष तक आत्माराम जी को शक्त्यानुसार ज्ञान विकास में सहायता दी। विदायगी के समय प्रभाविक उपदेश देते हुए कहा कि आप को बोध कराने में एक वर्ष तक मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी है। आप के विचारों को मैंने भली भान्ति समझा है। मैं यह देखकर प्रसन्न हूं कि आपके दिल में सत्य और असत्य निर्णय करने की प्रबल इच्छा है और सूत्रों के समझने की योग्यता है। मैंने आज तक बीसियों गृहस्थी और साधुओं को पढ़ाया है परन्तु आप जैसा होनहार विद्यार्थी नज़र से नहीं गुजरा। मेरा जीवन का समय परिमित है, इसलिये मेरे अन्तिम उपदेश को ध्यान से सुनना और याद रखना जैनधर्म अनादि है, यह वह सचाई है जिसकी स्थिति अहिंसा पर है, जिसे दया की देवी अपने कन्धों पर उठाये हुए है। संसार का कोई धर्म इसकी तुलना नहीं कर सकता। छल और कपट से थोड़े समय के लिये लोगों को पदभ्रष्ट किया जा सकता है, परन्तु सचाई कभी मिट नहीं सकती। इस समय जैन धर्म अल्प संख्या में है, कुकर्म, कुरीतियें जैनों के उन्नति मार्ग में विघ्न है। जैनधर्म के नियम अति सुन्दर हैं। वीतराग, सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी ने जो मार्ग चतुर्विधसङ्घ* के लिये निश्चित किया है उस पर चलना न केवल

---

* चतुर्विधसङ्घ = साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका।

जैनधर्मियों के लिये ही है परन्तु प्राणिमात्र के लिये कल्याण-कारी है। वर्तमान जैनसमाज वीतराग भगवान् के बताये हुए मार्ग को भूलकर अन्धकार का शिकार हो रही है। मेरा दिल कहता है कि आप इस काम को पूरा कर सकोगे। आप की भाषा में शक्ति और उपदेश में जादू का असर है। सूत्रों और ग्रन्थों के अध्ययन से आपका हृदय और मस्तिष्क प्रकाशित है। मेरी इच्छा है कि आप जैनधर्म का झंडा हाथ में लेकर और जातिधर्म के भेद को भूलकर प्राणिमात्र की सेवा करें। आप अहिंसा और सत्य का सन्देश घर २ में पहुंचा देवें और मिथ्यात्व नाश कर जैनधर्म के महत्त्व को बढ़ायें। मैं आप को आशीर्वाद देता हूं कि आप को सदैव जय प्राप्त हो। याद रखना, मूर्त्तिपूजा जैन धर्मानुसार सिद्ध है। कभी मूर्त्ति की निन्दा न करना। आपने भी उचित शब्दों में रत्नचंद जी का आदर और सत्कार किया और प्रण किया कि वह सत्य के प्रकाश में सर्व प्रकार की कठिनाईयों का सहन करेगा।

क्रांति और उसका विरोध

महाराज रत्नचंद जी से सत्यधर्म के प्रचार का प्रण कर के आत्माराम आगरा से चल पड़ा। आप के दिल में केवल सत्यधर्म प्रचार का विचार था और उसी की अग्नि हृदय में प्रज्वलित थी। सत्य के लिये आप सब प्रकार का कष्ट सहने को तैय्यार थे। सत्यमार्ग से बड़ी से बड़ी निस्स्वार्थता आप को डगमगा नहीं सकती थी। उस समय पंजाब जैन सङ्घ में मूर्त्तिपूजा का उपदेश क्रान्तिकारी था। आप सम-

झते थे कि साधु समाज आप के विचारों का घोर विरोध करेगा परन्तु सांच को आंच नहीं आप अपने जीवन का आदर्श नियत कर चुके थे और उसकी सफलता के लिये कार्यारम्भ करना चाहते थे। उस समय महाराज जीवणराम जी देहली में विराजमान थे। आप उनकी सेवा में उपस्थित हुए और अपना निश्चय प्रगट किया तो वह डरे कि उनका होनहार शिष्य जान बूझकर अपने आप को सङ्कट में डाल रहा है। सब प्रकार से समझाने की कोशिश की। परन्तु दृढ निश्चय को बदल न सके। आखिर कहा कि याद रक्खो अगर आप अपने भोले विचारों से न हटे तो आप को पछताना पड़ेगा। यदि मूर्तिपूजा जैन सूत्रों के अनुसार भी हो तब भी पंजाब जैन समाज में इसका वर्णन करना अत्यंत मूर्खता है। यदि प्रचलित धर्म का विरोध किया तो आप के लिये संयम का निर्वाह कठिन हो जावेगा। वस्त्र और स्थान तो अलग रहे आहार पानी तक का बायकाट कर दिया जायेगा जिससे आप को संयम से भ्रष्ट होना पड़ेगा। आप ने गुरु की बातों को सुना और विनय से उत्तर दिया। सत्य की खोज में मैंने दीक्षा ग्रहण की। सत्यधर्म प्रचार ही मेरा लक्ष्य है। सङ्कट मुझे अपने निश्चय से हटा नहीं सकते। आहार पानी वस्त्र और स्थान यह साधारण चीजें हैं, प्राप्त न भी हुई तो क्या हुआ। मैं बड़े से बड़े कष्ट को सहर्ष सहन करूंगा। मुझे विश्वास है कि मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य सफलता प्राप्त करूंगा। आप खूब जानते थे कि पंजाब के जैन साधु समुदाय में एक भी साधु या श्रावक

आपके विचारों से सहमत न था। आप अकेले ही मैदान में कूद पड़े।

पंजाब की जैन समाज में इस समय मूर्तिपूजा के लिये बहुत घृणा थी। प्रथम तो जैन समाज में श्वेतांबर जैन मन्दिर बहुत अल्प थे और जहां कहीं यतियों की स्थापित प्रतिमायें थीं वह विरोध के कारण बंद कर दी गयीं। किसी साधु को साहस नहीं था कि वह मूर्तिपूजा का उपदेश देता। जैनधर्मी अन्य देवी देवताओं का पूजन करते थे। गुग्गा शीतला, होई आदि को मानते थे। मुसलमान फकीरों की कबरों पर श्रद्धा से जाते थे। सांसारिक काम के लिये मूर्ति-पूजा का विरोध न था परन्तु धार्मिक भाव से प्रभु भक्ति निमित्त मूर्त्तिपूजा का निषेध था और मूर्त्तिपूजक से घृणा की जाती थी। किसी की क्या शक्ति थी कि उस समय के जैनों को मूर्त्तिपूजा का उपदेश देता। मूर्त्तिपूजा के विषय में प्रथम आपने विद्वान् साधुओं से वार्त्तालाप किया और युक्ति पूर्वक शास्त्रों के प्रमाण देकर उन्हें सहमत बनाया। महाराज कनीराम जी से सनाम में मुठ भीड़ हुई। युक्ति के स्थान पर कनीराम जी ने क्रोध का आश्रय लिया। पक्षपात के कारण आत्माराम जी को धमकाने लगे और जोर से कहा कि तुम्हारा विश्वास शुद्ध नहीं है क्योंकि तुम गुरु और दादा गुरुओं के बताये हुए अर्थों को अशुद्ध बतलाते हो। भला रीति का उल्लङ्घन कैसे हो सकता है। परन्तु आप रीति के गुलाम नहीं थे। आपने धैर्य से उत्तर दिया—मैं शास्त्र प्रमाण मानता हूं, युक्ति के सन्मुख सिर झुकाता हूं। गुरु

और दादागुरु का बंधाहुआ नहीं हूं, कि अन्ध विश्वास से काम लूं। मुझे तो वीर भगवान के सूत्र प्रमाण हैं। मैं अपने विचारों की पुष्टि भली भांति कर सकता हूं। कनीराम जी यह उत्तर सुनकर आप से वाहिर हो गये और व्यर्थ कोसने लगे। थोड़े ही समय में आप के प्रचार से स्थान स्थान पर श्रावक जन आप के श्रद्धालु वनने लगे। मूर्त्तिपूजा की बढ़ती हुई लहर को देखकर पूज्य अमरसिंह जी जो उस समय स्थानकवासी साधुओं में मुख्य थे सोचने लगे, और आत्माराम जी को अपने पास वुलाकर समझाने लगे, परन्तु आप की युक्ति को काट न सके। एकान्त में लेजाकर कहने लगे– 'कि तुम विद्वान् और होनहार हो, शास्त्रों के संवन्ध में जो शङ्कायें तुम्हें पैदा हो गयी हैं वह निकाल दो और मेरी आज्ञा से मूर्त्तिपूजा का प्रचार वंद कर दो। मैं नहीं चाहता कि हम दोनों में विरोध वढे। आत्माराम जी ने नम्रता से उत्तर दिया—मैं आप की आज्ञा स्वीकार करने को तय्यार हूं, परन्तु सत्यमार्ग को कदापि नहीं त्याग सकता। आप ही विचारें मैंने अपना घर ग्राम परिवार संवन्धी मित्र सज्जन सव किस लिये छोड़ दिये? "केवल सत्य की खोज में"। जैन ग्रन्थों से जो सत्यमार्ग मुझे प्रतीत होता है मैं अवश्य उसी का पालन करूंगा। मेरी तो आप से भी यही प्रार्थना है कि आप वीर भगवान् की आज्ञा का पालन करें और भगवान् के निश्चित मार्ग पर चलें आप पूज्य हैं इसलिये विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

सोच विचारकर पूज्य अमरसिंह जी ने साधुसमुदाय

के नाम मूर्त्ति पूजा के विरुद्ध एक व्यवस्थापत्र निकाला और सब को उस पर हस्ताक्षर करने की आज्ञा दी। आत्माराम जी के गुरु जीवणराम जी को व्यवस्थापत्र देते हुए कहा—कि वह शिष्य आत्माराम के हस्ताक्षर करायें। जब वह व्यवस्थापत्र आत्माराम जी के सन्मुख रक्खा गया तो आपने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया और विनय-पूर्वक कहा—कि आपका आदर मेरे लिये आवश्यक है। यदि कोई और व्यक्ति इस व्यवस्थापत्र को मेरे पास लाता तो मैं इसे छिन्नभिन्न कर देता। मैं समझता हूँ कि यह पत्र मेरे लिये ही निकाला गया है। पूज्य जी महाराज से कहदें कि देवपूजन वा भक्तिमार्ग जैनियों का धर्म है, मैं परम्परा का गुलाम नहीं हूं। संसार की कोई शक्ति मुझे सत्यधर्म के प्रचार से रोक नहीं सकती। सच्चाई देर तक छुपी नहीं रह सकती। पूज्य अमरसिंह जी को ज्योंही यह उत्तर मिला तो उन्होंने एक आज्ञापत्र द्वारा आत्माराम जी को संघ से निकाल दिया और घोषणा की कि पंजाब में कोई जैनी आत्माराम को आहार पानी तथा ठहरने का स्थान न दे। यह था बहिष्कार जिसका मुकाबला आपने वीरता से किया।

यद्यपि आपका विचार पंजाब से बाहिर जाने का था परन्तु बहिष्कार की धमकी मिलते ही आप पंजाब की ओर चढे। आपके वापिस देहली पहुंचने के पहिले ही वहां पत्र पहुंच चुका था। पूज्यजी के श्रद्धालुओं ने आपका विरोध किया परन्तु आपके प्रभावशाली उपदेशों से जैन जनता के विचारपलट

ने गुजरात की ओर कदम उठाया और विकट मार्ग की परवाह न करते हुए अपने साथियों के साथ विक्रम संवत् १९३१ का चतुर्मास समाप्त होने पर चल दिये।

आप का विचार था कि गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रान्तों के जैन पंजाबी जैनों से उत्तम दशा में होंगे, परन्तु दूर के ढोल सुहावने की भांति वहां जाकर प्रतीत हुआ कि अज्ञानता और कुरीतियों ने वहां भी समाज का नाश किया हुआ है। बड़े २ तीर्थ स्थानों पर जहां प्राचीन ऐतिहासिक महत्त्व और शिल्पकला की विभूति को देखकर आपका मन प्रफुल्लित हुआ वहां प्रचलित बुराइयों को देखकर आप को दुःख भी हुआ। मन्दिरों के आय व्यय की व्यवस्था का ठीक करना अत्यावश्यक मालूम दिया। जीर्णोद्धार भी बहुत समय से न हुआ था, इसलिये कई एक मन्दिर शोचनीय अवस्था में थे। तीर्थ स्थानों में प्रतिमायें अधिक संख्या में थीं। परन्तु उनके पूजन का उचित प्रबन्ध न था। जैनाचार्यों के रचित असूल्य ग्रन्थ भूगर्भ गृहों में बंद पड़े थे, जो यवनों के राज्य में अत्याचार के भय से छिपा दिये गये थे। यद्यपि अत्याचार का समय व्यतीत हो चुका था तथापि जैनों का भय दूर न हुआ था। वह अपने पुस्तकभण्डारों को किसी के पास प्रगट करना नहीं चाहते थे। पाश्चात्य विद्वान् खोज के काम में लगे हुए थे परन्तु जैन शास्त्रों के रक्षक अपनी पुस्तकों को अन्धेरे से प्रकाश में लाने के लिये तैय्यार न थे। प्रमाद के कारण बहुत सी पुस्तकों को कीड़े खा चुके थे। जो शेष बच रहे थे वह सिल के कारण नष्ट

हो रहे थे जैन समाज ज्ञात पात के वन्धन में जकड़ा हुआ था। वह वनिये और श्रावकों की सम्पत्ति वन चुका था। संकुचित विचारों के कारण छोटी २ जातियें साधारण भेदों के होने से लड़ झगड़ रहीं थीं। एक दो मुखिया विद्वान् साधुओं के शिथिलाचारी हो जाने से साधुसमुदाय को अत्यन्त हानि पहुंच रही थी। गुजरात में धनाढ्यलोग एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह कर लेना अनुचित नहीं समझते थे। ईसाई धर्म और अंगरेजी शिक्षा के प्रचार से पठित नवयुवक फैशन, मदिरा मांस भक्षण आदि व्यसनों की ओर झुक रहे थे ऐसे समय आत्माराम जी महाराज अपने पन्द्रह साथियों के साथ गुजरातदेश में दाखिल हुए। केवल विद्वता और आत्मवल ही आप का पासपोर्ट था आप जहां कहीं पधारे अपने क्रान्तिकारी विचारों से जनता को अपनी ओर आकर्षित किया।

गुजरात में अहमदावाद श्वेतांवर जैनों का शिरोमणि नगर गिना जाता है। यहां दस हजार से अधिक जैनी आवाद हैं। जैन मन्दिर भी वहु संख्या में हैं। वीसियों जैन मुनि यहां के विशाल उपाश्रयों में हर समय विद्यमान रहते हैं। उस समय श्री शान्तिसागर जी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध गिने जाते थे। काठियावाड़ गुजरात में उसकी धूम मची हुई थी। यद्यपि वह जैनधर्म का साधु था तथापि उसका आचरण शास्त्रानुसार न था, साधु धर्म अङ्गीकार करके वह गृहस्थों जैसा विलास का जीवन व्यतीत करता था। किसी साधु को उसके साथ शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं था।

इसी समय श्रीमणि विजय जी, तपस्वी श्रीबुद्धि विजय जी आदि मुनिराज भी अहमदाबाद में विराजमान थे। उनका चारित्र श्लाघनीय न था। दोनों ने आप को अपने पास ठहराने का प्रयत्न किया। परन्तु आप स्थानीय अनुभव न होने के कारण किसी पक्ष के साथ सम्मिलित होना न चाहते थे। इसलिये दोनों से अलग सेठ दलपत भाई जी के बंगला में ठहरे जहां पंजाबी साधुओं के समूह के दर्शन के लिये हजारों जैनी इकट्ठे हो गये। आपने दो घंटा तक श्रोताओं को 'धर्म क्या वस्तु है' इस विषय पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। पहले ही उपदेश से आप की विद्वत्ता का परिचय मिल गया।

थोड़े ही दिनों में आपने जान लिया कि शांतिसागर के उदाहरण से साधु समुदाय को हानि पहुंच रही है इसलिये साधु और गृहस्थ दोनों को शान्तिसागर जी के बुरे प्रभाव से बचाने के लिये आपने आवश्यकसूत्र पर जिसमें साधुओं के क्रियाकाण्ड का वर्णन है व्याख्यान देना आरम्भ किया। आपने साधुधर्म का महत्त्व प्रगट करते हुए जैन साधु के गुणों का वर्णन किया और बतलाया—कि गृहस्थों को कैसे गुरु की वंदना करनी चाहिये। आप के उपदेशों का प्रभाव यह हुआ कि धीरे २ गृहस्थ लोग शान्तिसागर को छोड़ने लगे और उसका मान प्रतिदिन कम होने लगा। यह देख कर शान्तिसागर कैसे चुप रह सकता था। उसने आपको शास्त्रार्थ के लिये चैलेञ्ज दिया जिसे आपने झट स्वीकार कर लिया। निश्चित दिन सेठ दलपत भाई के बंगला में

हजारों लोग शास्त्रार्थ सुनने के लिये एकत्रित हो गये। प्रथम शान्तिसागर ने तत्वज्ञान के कठिन प्रश्न किये जिस का आपने सन्तोषजनक उत्तर दिया। फिर आपकी वारी आयी और साधुओं के कर्त्तव्य के विषय में आपने प्रश्न किये तो शान्तिसागर से उत्तर न वन सका। यह देखकर आपने ललकार कर कहा कि चारित्र के विना ज्ञान लंगड़ा है। अगर विद्वान् पुरुष कर्त्तव्य पालन न करे तो शोक है। हठधर्म अत्यन्त बुरा है। इसलिये सचाई की शरण लेकर झूठ त्याग देना चाहिये। आपके इस शास्त्रार्थ का प्रभाव अहमदावाद की विचार शील जनता पर बहुत अच्छा पड़ा। शान्तिसागर का जादू हट गया, परन्तु उसके अन्धभक्त क्रोध में आये और वह आपके विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। आपको इसकी परवाह न था। इसलिये साधु सुधार के लिये उपदेशों का सिलसला जारी रहा जिस से शिथिलाचारी साधुओं के प्रति अहमदावाद की जैन जनता के विचारों में क्रान्ति होगयी जिसका परिणाम यह हुआ कि शान्तिसागर की मानप्रतिष्ठा उठ गई और उन्हें अपने आचार को शुद्ध करना पड़ा।

अहमदावाद की तरह सूरत नगर में भी धनाढ्य जैनों की अच्छी वस्ती है। जो सन्मान शान्तिसागर को अहमदावाद में प्राप्त था वह ही हाकममुनि को सूरत में हासिल था। वह भी साधु धर्म के नियमों की परवाह न करता था। जब आप सूरत पधारे हाकम मुनि शास्त्रार्थ के लिये सन्मुख न आया। उसकी रचित पुस्तक अध्यात्म सार पर

आपने लिखित प्रश्न उसके पास भेज कर उत्तर चाहा। इस तरह लिखित प्रश्नोत्तर होते रहे अन्त में हाकममुनि को लज्जित होकर सिर झुकाना पड़ा। आपने अपने विचारों से न केवल साधुसमुदाय में ही क्रान्ति उत्पन्न की बल्कि गृहस्थों में भी खलबली मचादी। धार्मिक और सामाजिक सुधार के लिये आपने गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़, गोरवाड़, पंजाब आदि प्रान्तों में खूब भ्रमण किया और अपने क्रान्तिकारी विचारों से नवीनशक्ति पैदा करदी।

धर्मोपदेश के लिये भ्रमण

जब आप पंजाब से गुजरात की ओर रवाना हुए तब आपको विचारमात्र भी न था, कि गुजरात काठियावाड़ में साधुसमुदाय अपने कर्तव्य से गिर कर शिथिल हो चुका है और गृहस्थों में सामाजिक कुरीतियें पंजाबी जैनों से भी अधिक हैं। आपने गुजारत पहुंच कर थोड़े ही समय में जैनों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का पता लगा लिया। आपको विश्वास था कि आप अपनी विद्वत्ता से जैनों को जागृत करके उन्हें अपने कर्त्तव्य पालन के लिये तैय्यार कर सकेंगें। परन्तु इसके लिये परिश्रम, प्रभाव, अध्यात्मिक शक्ति बुद्धिमत्ता आदि गुणों की आवश्यकता थी, यह गुण आप में अच्छी तरह विद्यमान थे। परिश्रम आप के जीवन का अङ्ग था। आपके उन्नत चरित्र, गम्भीर पाण्डित्य और भाषण शक्ति से प्रभावित होकर अहमदाबाद के नगरसेठ प्रेमाभाई हेमाभाई और दलपतभाई भग्गूभाई जैसे प्रधान-व्यक्ति आप पर मुग्ध हो चुके थे। आपका प्रोग्राम निश्चित

था। उसको कार्यरूप में परिणित करने से पहले आप तीर्थ यात्रा से अपनी हार्दिक अभिलाषा पूर्ण करना चाहते थे। इसीलिये थोड़े ही समय के पश्चात् अहमदावाद से श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा के लिये चलपड़े। जैनी मात्र के लिये श्री शत्रुंजय तीर्थ विशेष आकर्षण रखता है। पालीताणा की पहाड़ी पर सताईस सौ जिन मन्दिरों का दृश्य ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि यह मन्दिरों का नगर है। यह तीर्थ प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदीश्वर भगवान के नाम से प्रसिद्ध है। आप निन्यानवे पूर्व वार इस स्थान पर पधारे थे। जैन ग्रन्थों में श्री शत्रुंजय तीर्थ को शाश्वत लिखा है और धर्माचार्य्यों ने गद्य और पद्य में इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। आप और आप के साथियों को तीर्थयात्रा से हार्दिक प्रसन्नता हुई। पालीताणा से भावनगर होते हुए आप वि० संवत् १९३२ के चतुर्मास के निकट अहमदावाद लौट आये और महाराज बुद्धिविजय जी से संवेगी दीक्षा ली।

सं० १९३२ का चतुर्मास आप ने अहमदावाद में किया। सुधार के काम को हाथ में लेने से पहले आपको आवश्यक मालूम हुआ कि प्रथम साधु समुदाय का जीवन श्रेष्ट बनाया जावे। चतुर्विधसङ्घ की रचना करते हुए भगवान् महावीर स्वामी जी ने साधुओं को मुख्य रक्खा है। धर्म प्रचार का कार्य प्रायः उन्हीं के हाथ में है यदि उनका जीवन नियमानुसार आदर्श नहीं है तो उनके उपदेश का प्रभाव जनता पर कैसे पड़ सकता है। आपका मन्तव्य था कि आचार भ्रष्ट साधु समाज के लिये हानिकारक है। पुष्पमाला

में यदि एक भी पुष्प मुरझा जाय तो माला का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। इसी तरह साधुसमुदाय में यदि एक भी साधु आचारवान ही न हो तो शासन को कलङ्कित कर देता है। अतः आवश्यक है कि साधु अपने चारित्र को यथाशक्ति द्रव्य क्षेत्र काल भाव विचार कर सिद्धान्तानुसार वनाये। आप स्वयं आदर्श जैन साधु थे। आपका मन शुद्ध और विचार उच्च थे। आप नित्य प्रातःकाल तीन और चार वजे के मध्य उठते थे। नवकार मन्त्र का जाप करके एकाग्रमन वैठ जाते थे और फिर साधुओं के साथ प्रतिक्रमण करते थे। नित्यकर्म से मुक्त हो कर निश्चित समय पर डेढ दो घंटा श्रावकों को धर्मोपदेश सुनाते थे। व्याख्यान समाप्त होने पर पत्र व्यवहार में लग जाते थे। फिर आहार के वाद चार घंटा स्वाध्याय तथा लिखने का काम करते थे। फिर साधुओं को शास्त्र पढ़ाते थे। रात के प्रतिक्रमण के वाद दस वजे तक जिज्ञासुओं से वार्त्तालाप करते थे और फिर आराम करते थे। यह प्रोग्राम प्रायः चतुर्मास के दिनों का था। समय और स्थान के अनुसार इस में परिवर्तन भी कर लेते थे परन्तु कभी समय का व्यर्थ उपयोग नहीं करते थे। जिस प्रकार स्वयं काम में लगे रहते थे उसी तरह शिष्य परिवार को भी लगाये रखते थे। जहां तक सम्भव था अपना काम स्वयं करते थे। गृहस्थों पर वोझ नहीं डालते थे। उदाहरणरूप जव आप एक वार जीरा में पधारे हुए थे कुछ पुस्तकें लुधियाना भंडार से मंगवाने की जरूरत हुई। आपने शिष्य सुन्दर विजय और सुमति विजय

को आज्ञा दी कि लुधियाना से पुस्तकें ले आवें। आज्ञा मिलते ही वह झट चल पड़े और सौ मील का सफर करके पुस्तकें लेकर तीसरे दिन लौट आये।

इसी तरह जब आप खंभायत के निकट थे, खंभायत के भण्डार से कुछ पुस्तकें मंगवाने की जरूरत पड़ी। आपने शिष्यों को लिखा कि अमुक २ पुस्तकें लेकर पहुंच जाओ। पुस्तकें भारी होने के कारण साधुओं ने स्वयं उठाने की जगह एक मजदूर के सिर पर रखवा दिये और सायंकाल आपकी सेवा में उपस्थित हुए। इस तरह साधुओं को मज-दूर के सिर पर पुस्तक उठवाये हुए देखकर आपने अपनी अवज्ञा प्रगट की और कहा कि मैं साधु का काम साधुओं से लेना चाहता हूं। अगर पुस्तकें मजदूर के सिर पर ही मंगवानी होती तो किसी श्रावक को लिख दिया जाता। उपाश्रय में उपस्थित सब साधुओं को बुला कर आपने उन साधुओं को लज्जित किया और दण्ड देकर सब को शिक्षा दी कि फिर ऐसा न हो। जब आप सूरत में विराजमान थे तब चतुर्मास आरम्भ होने के पहिले कुछ श्रावक वस्त्र पात्रादि लेकर उपाश्रय में आये और आपके शिष्यों से वस्त्र लेने की प्रार्थना की। एक दो साधुओं ने कुछ वस्त्र लेलिये। जब आपको मालूम हुआ तब आपने साधुओं को बुला भेजा और उत्तर मांगा—कि उपाश्रय में वस्त्र क्यों लिये गये। उन्होंने अपना दोष स्वीकार किया और भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा की। शिष्य परिवार को बुलाकर आज्ञा दी—कि वह सदा ऐसे दोषों से बचे रहें। आवश्य-

कतानुसार केवल गुरु की आज्ञा से गृहस्थों के घरों से मांग कर वस्तु लेनी चाहिये। शिष्य परिवार की (Discipline) कायम रखने के लिये आपको अपने विद्वान् शिष्य शान्ति विजय को पृथक् करना पड़ा। आप और आपके शिष्यपरिवार ने अपने अमली जीवन तथा उपदेश से साधुसमुदाय की शिथिलता को दूर करने का अत्यन्त प्रयत्न किया।

साधुओं के सुधार के साथ ही आपने गृहस्थों के सुधार की ओर भी पूरा ध्यान दिया। आप खूब समझते थे कि जब तक ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल, खन्डेलवाल आदि भिन्न २ जातियों का परस्पर संगठन न होगा जैनों की उन्नति करना कठिन होगा। आपके लिये आश्चर्य की बात तो यह थी कि एक ही वीतराग भगवान् के भक्त होते हुए आपस में द्वेष क्यों करते हैं? अहमदाबाद में ही आपने प्रयत्न किया कि विविध २ जातियों को मिला दिया जाय। गुजरात और काठियावाड़ में भ्रमण करते हुए आप जहां भी गए संगठन का उपदेश दिया। कई स्थानों पर सफलता पर सफलता भी हुई परन्तु जात्यन्तर विवाह की प्रथा जारी न हो सकी। आपका कहना था कि जितने मनुष्य जैन धर्म पालते हैं वह भाई से अधिक प्यारे हैं। उन के साथ खान पान का जैन शास्त्रों में कहीं निषेध नहीं, क्योंकि जब श्रीरत्न प्रभ सूरिजी* ने अठारह हजार कुटुंबोंको जैन धर्मी बनाया तो वह सब "जैनी होने से परस्पर पुत्र पुत्री का विवाह करने लगे और परस्पर खाने पीने

* प्रश्नोत्तरसंग्रह स्वामी आतमाराम जी P. 15.

लगे। इनमें से कितने गोत्र वाले राजपूत थे और कितने ब्राह्मण और वनिये भी थे। इस वास्ते अगर जैन शास्त्रों से यह काम विरुद्ध होता तो आचार्य महाराज श्री रत्नप्रभ सूरिजी इन सब को इकट्ठे न करते।

आप ने दैनिक उपदेशों में संगठन की आवश्यकता बतलाते हुए आपने सामाजिक कुरीतियों की ओर जनताके ध्यानको आकर्षित किया। विवाहके अवसर पर वृथा व्ययसे बचने के लिये जोर दिया। एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह करना हानिकारक कहा। ब्रह्मचर्य व्रत का महत्व बतला कर विचारशील श्रावक और श्राविकाओं को शील व्रत अङ्गीकार करने का उपदेश दिया। उस समय गुजरात काठियावाड़ में से स्वधर्मी वात्सल्य की प्रथा भी खूब जोरों से थी। हजारों रुपैया खानपान में निष्फल व्यय हो रहा था। बहुत से मन्दिर होते हुए भी सेठिया लोग नाम के लिये मन्दिर बनवा रहे थे। आपने अपने व्याख्यानों और लेखों में अच्छी तरह बतलाया कि ऐसे स्वधर्मी वात्सल्यों से कुछ लाभ नहीं और केवल यश के लिये मन्दिर बनवाने में अल्पफल है। आपका कहना था कि जैनों की दो इंद्रियें ज्ञान का उद्धार नहीं होने देतीं 'एक तो नाक और दूसरी जिह्वा' क्योंकि नाक के वास्ते अर्थात् अपनी नामवरी के वास्ते खाने में लाखों रुपैया खर्च करते हैं। चूरमा और लड्डुओं की खबर लिये जाते हैं परन्तु जीर्ण भण्डार के उद्धार करने की बात तो क्या जाने स्वप्न में भी करते होंगे कि नहीं।

गुजरात और काठियावाड़ के जैन भण्डार जगत्प्रसिद्ध हैं। मुसलमानों के अत्याचारों से अमूल्य पुस्तक जल कर राख हो चुके थे। जो बच रहे थे वह जैनों ने शत्रुओं के भय से भूगर्भ भण्डारों में छुपा रक्खे थे। यह विधान उस काल के अनुकूल था। यदि ऐसा न किया जाता तो आज हम महर्षियों के रचित ग्रन्थों के रत्नतत्त्वों से वञ्चित रह जाते। परन्तु समय बदल चुका था। ग्रन्थों को भूगर्भ भण्डारों में बन्द रखने की बजाय शान्ति और सभ्यता के काल में जैन साहित्य के प्रचार के लिये खुले पुस्तकालयों में रखना आवश्यक था। जो बात उस काल में हितकारी थी अब अहितकारी हो रही थी। संरक्षकों की मूर्खता से ज्ञान के भण्डार सिलके कारण अपठनीय हो रहे थे। कई पुस्तकों को दीमक खा रही थी। कई जीर्ण हो जाने के कारण नष्ट हो रहे थे। जहां आपको संरक्षकों की श्रद्धा और भक्ति भाव से सन्तोष हुआ वहां आपको यह देखकर दुःख हुआ कि वह लोग उनका सदुपयोग करना नहीं जानते। आपने पाटण, राधणपुर, खंभायत आदि नगरों का जहां बड़े शास्त्र भण्डार थे, खूब भ्रमण किया और स्थान २ पर आपने संरक्षकों को समझाया कि वह पुस्तकों के केवल चौकीदार ही नहीं, बल्कि उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वह जैन साहित्य के प्रचार में सहायक हों। यह उचित नहीं कि पुस्तक अपने स्थान पर पड़े पड़े नष्ट हो जावें। आपके उपदेश का परिणाम यह हुआ कि हजारों रुपैये पुस्तको-द्धार के लिये इकट्ठे हो गये। कुछ भण्डारों की सूची

बनायी गयी। जीर्णताडपत्र और दीमक खाये हुए ग्रन्थों की लिखाई के लिये उचित प्रबन्ध किया गया।

जहां आप पुस्तकोद्धार का उपदेश दे रहे थे वहां शिक्षा के लिये पाठशाला उपस्थित करने की आवश्यकता भी जतला रहे थे। ईसाइ मिशनरियों के जाल से शिक्षित युवकों को बचाने के लिये आपने मांसभक्षण और मदिरापान के विरोध में जाहिर व्याख्यान दिये। आप अंगरेजी पठित युवकों से कहा करते थे, कि आंखें मस्तक पर इसलिये हैं कि आप पूर्व की ओर जिधर से सूर्य देवता प्रकाश डालता है देखें न कि पाश्चात्य की ओर जिधर सूर्य अस्त होता है। ईसाइ मिशनरीयों की बातों की जांच करो और अपनी पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करो। ईसाइ मिशनरियों के प्रचार से कुछ पठित नवयुवक अपने धर्म से घृणा करके ईसाइ बनने की चेष्टा कर रहे थे, उस समय आपने ईसाइ धर्म के विरोध में व्याख्यान दिये।

चतुर्मास के बाद आपने गुजरात काठियावाड़ का खूब भ्रमण किया और जी भर कर तीर्थयात्रा का लाभ उठाया। विक्रम संवत् ३३ का चतुर्मास भावनगर में किया। यहां पर आपके उपदेश से एक पाठशाला जारी हुई। शास्त्र भण्डारों की रक्षा के किये यहां भी लोगों को जागृत किया और सन्तोष जनक प्रबन्ध कर दिया।

यद्यपि गुजरात काठियांवाड़ में काम अधिक था फिर भी आपका मन पंजाब के जैन श्रावकों की ओर खिंचा हुआ था। आपके पास शीघ्र पंजाब पहुंचने के लिये पत्र आ

रहे थे। इसलिये आपने पंजाब पहुंचना ही उचित समझा। गुजरात से चल कर पैदल पंजाब पहुंचना साधारण काम नहीं फिर आप जैसे विद्वान् के लिये, जिसकी उपस्थिति हर जगह आवश्यक हो। आप सीधा पंजाब पहुंचने के लिये उत्सुक तो थे परन्तु आप को जोधपुर रुकना पड़ा जहां बहुत से जैन अजैन हो चुके थे। आपके प्रभावशाली धर्मोपदेश से वह फिर जैन धर्म में लौटआये और सम्यक्त धारण किया।

जोधपुर से चल कर आप धीरे २ पंजाब पधारे। अम्बाला में आपका हार्दिक स्वागत किया गया। लुधियाना में आपका प्रवेश बड़े जलूस से कराया गया। गुजरात से वापिस आकर आपने पंजाब में पांच चतुर्मास लुधियाना जंडियाला, गुजरांवाला, होशियारपुर और अम्बाला में किये। पांच साल में आपने पंजाब के बहुत से नगर और ग्रामों के जैनों को धर्मोपदेश सुना कर दृढ बनाया और उनको मिथ्यात्वपूजन से हटा कर जैन भक्ति का मार्ग दिखलाया। बहुत से स्थानों पर जैन मन्दिर बनवाने की आवश्यकता देखी। जैनों में महापुरुषों के उत्सव मनाने की प्रथा जारी की। कुछ स्थानों पर स्थानकवासी तथा तेरहपंथी साधुओं को शास्त्रार्थ करके परास्त किया।

पंजाब में इस तरह जैनधर्म का प्रचार करके आप फिर गुजरात देश के लिये तैय्यार हो गये। कारण यह थे १ आप गुजरात से पंजाब में मन्दिर स्थापित करने के लिये मूर्त्तियें भिजवाना चाहते थे। २ आप कुछ उपयोगी पुस्तकें

लिखने का विचार कर चुके थे जिन के लिये शास्त्रभण्डारों का आश्रय लेना आवश्यक था और जिसके लिये गुजरात देश में आप को सुविधायें पर्य्याप्त थीं । ३ काठियावाड़ गुजरात में कार्यक्षेत्र विशाल था। समाज सुधार के अतिरिक्त शास्त्रभण्डारों की संभाल और जिन मन्दिरों के जीर्णोद्धार का काम अत्यावश्यक था। ४ तीर्थयात्रा का आकर्षण था। ५ वहां पधारने के लिये सङ्घों की ओर से प्रार्थना पत्र आ रहे थे।

चतुर्मास समाप्त होते ही आप शिष्यपरिवार के सहित अम्बाला से देहली आये और वहां से महरोली पहुंचे जहां कुतुब साहिब की लाट, पृथ्वीराज का मन्दिर और अन्य इमारतें देखने में आयीं। पृथ्वीराज का मन्दिर ध्यान पूर्वक देखने से दीवारों और दरवाजों पर तीर्थंकर वा जैन देवी देवताओं के चित्र खुदे हुए नज़र आये। खण्डित होते हुए भी स्पष्ट था कि यह किसी समय जैन मन्दिर था जिस से सिद्ध होता है कि महाराज पृथ्वीराज जैनधर्मी थे। जिस स्थान पर क़ुतुब साहिब की लाट खड़ी है वहां भी किसी समय जैन मन्दिर थे, और यह लाट उन मन्दिरों को गिरा कर बनायी गयी थी। खण्डित इमारतों की बनावट कह रही हैं कि वह किसी काल में जैनमंदिर थे। इन ऐतिहासिक इमारतों को देखते हुए आप दादाबाड़ी 'जहां पर जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी का समाधि मन्दिर है,' आये। मार्ग में एक व्यायामशाला में पहलवान व्यायाम कर रहे थे उन्हों ने जब आपकी आकृति को देखा तो एक पहलवान कहने लगा

उस साधु की ओर देखो कैसा डील डौल है। अगर तुम उससे कुश्ती लड़ो तो वह तुमको जमीन पर पटक देगा। लो वह शिष्यों सहित इधर ही आ रहा है। हाथ में दण्ड लिये हुए है। आप धीरे २ व्यायामशाला के निकट पहुंचे। सब पहलवानों ने उठकर वन्दन किया और हाथ जोड़कर कुछ दूध लेने की प्रार्थना की। आप ने धर्मलाभ दिया और कहा-भाई तुम पहलवान हो। व्यायाम के बाद दूध पीयोगे, हां! अगर गरम पानी है तो देदो। उन्होंने जवाब दिया हां गरम पानी मौजूद है लेकर कृतार्थ करें। एक पहलवान कहने लगा—महाराज अगर आप कुश्ती लड़ें तो हम सबको गिरा दें आप ने उत्तर दिया मैं मनुष्यों से कुश्ती नहीं लड़ता मैं इन्द्रियों से कुश्ती लड़ता हूं। आप में भी बल है तो क्रोध मान माया और लोभ आदि शत्रुओं को पछाड़ दें और इन्द्रियों पर विजय पावें। वह पहलवान कहने लगे-महाराज हम तो सब ब्रह्मचारी हैं, दूध और घी खाते हैं, कुश्ती लड़ते हैं और शिकार खेलते हैं। आपने उनकी नम्रता और सरलता देखकर कहा-और तो सब ठीक करते हो परन्तु शिकार खेलना उचित नहीं। वह कहने लगे अगर शिकार न खेलें तो मांस कहां से मिले। यह सुनकर आपने उन्हें मांसाहार के दोष बतलाये और सिद्ध किया कि मांसभक्षण ऐसा दोष युक्त है जिससे और कई दोष पैदा हो जाते हैं। पहलवानों ने पूछा—यह कैसे हो सकता है? आपने उत्तर दिया-आप सब पहलवान हो, प्रतिदिन व्यायाम करते हो, ब्रह्मचारी हो। इसलिये आपका भोजन अवश्य सात्त्विक

होना चाहिये। मांसभक्षण से विषयवासना बढ़ती है। इन्द्रियों का दास मनुष्य यदि अविवाहित हो तो उस की प्रवृत्ति वेश्यागमन की ओर हो जाती है जिससे मदिरापान की चेष्टा होती है। वेश्यागमन बुराइयों का मूल है। पहलवानों की खुराक घी दूध बादाम आदि हैं न कि मांसभक्षण जो कि हिंसक जीवों का भक्ष्य है। एक पहलवान ने कहा–महाराज आपका कहना सत्य है–परन्तु मांसभक्षण से शरीर बलवान् बनता है आपने झट कहा कि यह गलत है हमने कभी मांसभक्षण नहीं किया फिर भी तुम कहते हो कि मुझ में इतनी शक्ति है कि मैं आप सबको कुश्ती में गिरा सकता हूं। मनुष्य का बल वीर्य रक्षा में है। वीर्य रक्षा के लिये हो तुम व्यायाम कर रहे हो। मांसमदिरादि वस्तुयें विषयकषाय को बढ़ाती हैं, इसलिये उनका त्याग करो फिर देखना कि कैसे बलवान् बनते हो। आप के उपदेश से प्रभावित होकर सबने मांस त्याग का नियम कर लिया। फिर आप पानी लेकर दादावाड़ी पर चले गये।

महरोली से रवाना होकर आप कई स्थानों का भ्रमण करते हुए बीकानेर पहुंचे और यहां पर चतुर्मास किया। चतुर्मास समाप्त होने पर आप बीकानेर से गुजरात को चले। सरोही पहुंच कर आपने आबू जी के प्रसिद्ध मन्दिरों के दर्शन का निश्चय किया। सरोही का दीवान सेठ मिलाप चंद आपका भक्त सूरतनगर का वासी था। उस ने चार सिपाहियों को आपके साथ आबू पहाड़ जाने की आज्ञा दी। कुछ जटाधारी सन्यासी भी आबू पहाड़ पर जाने के लिये

आपके साथ चले अभी थोड़े ही दूर गये थे कि एक श्रावक घोड़ा दौड़ाता हुआ आपके पास आया और सूचना दी कि डेढ मील के दूरी पर बहुत से डाकू छुपे हुए हैं और पथिकों को लूट लेते हैं। यह सुनकर आपने कहा यदि ऐसा है तो वह स्वयं कैसे बच निकला उसने उत्तर दिया कि वह दस मील घूम कर पहुंचा है। यह सुनकर सिपाही भयभीत हुए और आप से कहने लगे कि घूम कर चलना चाहिये। सिपाहियों की कायरता देख आप का क्षात्र भाव जाग उठा। आपने उन्हें कह दिया कि आप प्रसन्नता से लौट सकते हैं। तुम हमारे कहने से न हीं आये और न ही तुम्हारी विशेष आवश्यकता है। आपने यह भी कहा कि तुम योद्धा हो कर डरते हो। यदि आप का यही पराक्रम है तो आज से कभी तलवार को हाथ मत लगाना। यह सुन कर सिपाही लज्जित हुए और कहने लगे-कि उन्हें कुछ भय नहीं। वह साधुओं की रक्षा के लिये प्राण तक समर्पण कर देंगे। आपने श्रावक से डाकुओं के छुपने का स्थान पूछ लिया। धीरे २ आप सब उस स्थान के निकट पंहुचे। सिपाहियों ने वृक्षों के झुंड की ओर इशारा करते हुए कहा डाकू उसमें छुपे होंगे। इसलिये वृक्षों में सरसराहट हो रही हैं। ऐसी विषम अवस्था में आपने झट चार २ साधुओं की पंक्तियें बनादी ओर सिपाहियों की पंक्ति को साधुओं के आगे किया और जटाधारी सन्यासियों को इसी तरह पंक्ति में पीछे चलने को कहा। साधुओं को यह भी आज्ञा दी कि वह दण्डों को साधारण रीति से रखने के बजाय

बन्दूक की तरह कन्धों पर उठायें। जब आपकी आज्ञानुसार इस तरह चलना शुरू हुआ तो डाकू जो वृक्षों के झुण्ड में छुपे हुए थे भयभीत होकर भाग निकले। उन्हें यह सन्देह हुआ कि सैनिकों का दल उन्हें पकड़ने के लिये आ रहा है। झुण्ड से आगे निकल कर सब आप की निपुणता की प्रशंसा करने लगे; परन्तु आपने कहा कि सावधान रहो, ऐसा न हो कि डाकू इधर उधर से हम पर टूट पड़ें।

इस तरह के भयानक पड़ाव को पार करके आप आबू-राज पधारे, जहां आपने तेजपाल और वस्तुपाल के बनाये हुए अद्वितीय मन्दिरों को देखा। संगमर्मर में ऐसी शिल्प-कला दिखलायी गयी है कि मनुष्य की बुद्धि देखकर विस्मित हो जाती है।

आबू से विहार करते हुए आप अहमदाबाद पधारे। इस बार आप का गुजरात देश में आना एक अज्ञात साधु की भांति न था, परन्तु आप एक प्रसिद्ध विद्वान् की तरह आये। अब कोई शान्तिसागर आप के मुकाबला के लिये मैदान में न निकला। सामाजिक सुधार की नींव तो आप पहिले ही रख चुके थे। अब उसे दृढ़ बनाना बाकी था। आपने फिर भिन्न २ जैनजातियों का परस्पर संबन्ध कराने का प्रयत्न किया। आप के उद्योग से विवाह सम्बन्ध तो न हो सका फिर भी धार्मिक कार्यों में विरोध मिट गया। उन दिनों पीटरसन जैन भंडारों के हस्तलिखित पुस्तकों के सूचीपत्र बनाने के काम में लगा हुआ था। आप के पुस्त-कोद्धार सम्बन्धी उपदेशों से उसके काम में सहायता

मिली। एक दिन आप अपने शिष्यों को पाठ पढा रहे थे, जब कि पीटरसन उपाश्रय में आया और आप की पाठन-शैली को देखने की इच्छा प्रगट की और देखकर प्रसन्न हुआ। जैन मन्दिरों के उद्धार के लिये जीर्णोद्धार फण्ड स्थापित हुए। बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिये प्रबन्ध हुआ। गुजरात में विवाह के अवसर पर वरघोड़ा निकाला जाता था। अधिक व्यय करने का रिवाज था। आपने उसे कम करके जैनों को मितव्ययता का उपदेश दिया।

आप का उपकार मानकर एक दिन श्रीसङ्घ अहमदाबाद ने प्रार्थना की। 'गुरु महाराज! आपने हम पर जो उपकार किये हैं, हम उनका बदला नहीं दे सकते, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर आप सैकड़ों मीलों का कष्ट उठाकर यहां पधारे हैं। अब श्रीसङ्घ की इच्छा है कि आपके पंजाबी भक्तों की कुछ सेवा करे। आपने उत्तर दिया ज़रा सोच लो, ऐसा न हो कि आप मेरे मांगने पर इनकार कर दें; क्योंकि जब मैं एक बार मांग लूंगा, तो फिर लेकर ही रहूंगा। नगर सेठ प्रेमाभाई ने कहा कि महाराज हम बनिये हैं आपके मांगने पर देंगे तो सही, परन्तु मांगेंगे सेर तो मिलेगा आध सेर। आपने झट उत्तर दिया अगर आप बनिये हैं तो मैं बनियों का गुरु हूं। सेर चीज मांगूंगा तो सवा सेर लेकर छोडूंगा। इस प्रकार वार्तालाप के बाद आपने कहा कि मैं यह जानकर प्रसन्न हूं कि श्रीसङ्घ अहमदाबाद पंजाबी जैनों की सेवा करना चाहता है। आप स्वयं जानते हैं कि पंजाब में देव-पूजन के लिये न मन्दिर हैं न प्रतिमा हैं। देव मान्दिर तो

वह लोग बनवा रहे हैं। यदि आप पंजाब निवासी स्वधर्मियों की सेवा करना चाहते हैं, तो अपने प्रेम की भेंट वीतराग परमात्मा की मनोहर प्रतिमायें भेजें। वह इस भेंट से सदैव आप के कृतज्ञ रहेंगे। यह सुनकर सेठ लोग बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु जब यह सूचना नगर के जैनों को मिली तो कुछ मूढ़मति मनुष्यों ने रुकावट डाली और विरोध किया। अन्त में समझदार पुरुषों का पक्ष प्रबल रहा और आपने पंजाब भेजने के लिये प्रतिमायें चुन लीं। थोड़े ही समय में अहमदाबादी सङ्घ ने बहुत सा रुपया खर्च करके आत्माराम जी की आज्ञानुसार प्रतिमायें पंजाब के भिन्न २ नगरों में भेज दीं। अहमदाबाद की तरह पालीताणा से भी कई एक प्रतिमायें पंजाब में भिजवायी गयीं।

इस बार आपने गुजरात और काठियावाड़ का खूब भ्रमण किया। पुस्तक भण्डारों की खोज में खंभायत तक गये। पाटण, राधणपुर, मसाणा, खंभायत, सूरत आदि बहुत से नगरों में पुस्तकोद्धार का काम किया। इसी तरह पांच वर्ष गुजरात और काठियावाड़ में परिश्रम उठा कर धर्मप्रचार किया, फिर पंजाब की ओर वापिस लौटे। रास्ते में एक चतुर्मास फिर जोधपुर में किया और मारवाड़ गोलवाड में भ्रमण करके मारवाड़ी जैनों की सामाजिक कुरीतियों का सुधार करने के लिये अत्यन्त परिश्रम किया। बालविवाह और वृद्धविवाह के विरोध में व्याख्यान दिये। पर्दे की प्रथा को हानिकारक बतलाया। पंजाब में वापसी पर प्रायः आपका कार्य मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराना और अपने

भक्तों को संगठित करना था। स्थान स्थान पर सामाजिक सुधार के लिये विशेष उद्यम किया। प्रतिष्ठा महोत्सवों पर बहुत से जैनी एकत्रित हो जाते थे, इस लिये ऐसे अवसरों पर जैनों की कान्फरेन्स में आपके उपदेश द्वारा कई सुधारक प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इस तरह गुजरात, काठियावाड़ मारवाड़ पंजाब आदि प्रान्तों में भ्रमण करके अपने क्रान्तिकारी विचारों से जैन समाज में नवीन शक्ति पैदा कर दी, जिस के लिये आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।



जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि

आपने वि० सं० ४३ का चतुर्मास पालीताणा में किया। वैसे तो आप शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा का लाभ पहिले ही प्राप्त कर चुके थे। परन्तु आप इस पवित्र अलौकिक तीर्थ पर कार्त्तिक शुदि पूर्णिमा के वार्षिक महोत्सव को न देख पाये थे। यह महोत्सव चतुर्मास समाप्त होने के दूसरे ही दिन प्रतिवर्ष हुआ करता है। महोत्सव देखने के लिये आवश्यक है कि चतुर्मास पालीताणा में हो। आज से पचास वर्ष पहले पालीताणा की अवस्था कुछ और ही थी। उस समय वहां जैन यतियों का इतना जोर था कि साधु के लिये वहां चतुर्मास करना तो एक तरफ, नगर में प्रवेश करना ही कठिन था। दो सौ वर्ष पहले साधुओं की शिथिलता और अज्ञानता के कारण यतियों ने समाज में पूज्यपदवी धारण कर ली थी। चिकित्सा, ज्योतिष, मन्त्रयन्त्रादि विद्याओं के कारण गृहस्थ लोग यतियों के वशीभूत हो चुके थे। सेठ अनूपचंद पहला पुरुष था, जिसने वि० ४३ का चतुर्मास

पालीताणा में करने के लिये आप से प्रार्थना की। अनूपचंद के बाद बहुत से नगरों से आपको प्रार्थनापत्र आये, कि यदि आप चतुर्मास पालीताणा में करें तो भिन्न २ स्थानों से बहुत से स्त्री पुरुष आप के साथ चार महीने तीर्थ स्थान पर रह कर धर्मोपदेश का लाभ प्राप्त करेंगे। आप जानते थे कि पालीताणा में यतियों की ओर से आप के चतुर्मास में रहने का विरोध किया जावेगा, परन्तु आप को इसका कुछ भी भय न था। आप पंजाब में विरोध की प्रज्वलित अग्नि से सुवर्ण के सदृश चमक उठे थे। इस विरोध के समूलोच्छेद के लिये आप चतुर्मास का निश्चय करके अपने शिष्यपरिवार से सुसज्जित होकर पालीताणा पधारे। आपके प्रवेश के पहले बहुत से श्रावकजन भिन्न २ नगरों से आये हुए थे। यतियों की ओर से उपद्रव मचाने की धमकियें दी गयीं। नगरसेठ प्रेमाभाई ने अहमदाबाद से एक तार ठाकुर साहब पालीताणा को दिया कि जैनों के शिरोमणि आत्माराम जी पालीताणा में प्रवेश कर रहे हैं। यतियों को उपद्रव मचाने से रोकें। ठाकुर साहिब ने नगर में घोषणा करा दी कि यदि कोई व्यक्ति जलूस के रास्ता में रुकावट डालेगा तो उसे दण्ड दिया जावेगा। जब आप को सम्भावित उपद्रव का पता मिला, तब आपने श्रावकों को कह दिया कि उन्हें स्वागत की इच्छा नहीं। वह नहीं चाहते कि किसी के चित्त में खेद हो। इसलिये वह विना जलूस के जावेंगे। परन्तु श्रावकों ने इसे अपनी निर्वलता समझा। वह अपना अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। श्रावकों के अनुरोध से आप को मानना

ही पड़ा। जब आपका जलूस धूमधाम से आदीश्वर भगवान् के मन्दिर के निकट नगर के मध्य में पहुंचा तो मालूम हुआ कि वहां कुछ यति राजा साहिब की आज्ञा का उलङ्घन करके विरोध के लिये कटिबद्ध हैं। उनमें से कुछ यतियों ने कोलाहल मचाया कि हम आत्माराम से लड़ेंगे, मन्दिर के सामने मर जायँगे या मार देंगे। जब वह समझाने से न हटे तो उन्हें पकड़ लिया गया। जब आप श्री आदीश्वर भगवान् के मन्दिर के दर्शन करके नरसी केशव जी की धर्मशाला में पधारे, तो थानेदार यतियों को पकड़ करके आपके पास लाया और पूछने लगा कि इन्हें क्या सजा दी जाय। आपने झट उत्तर दिया कि इनको छोड़ दो। थानेदार ने ऐसा ही किया।

श्री शत्रुंजय जैसा पवित्र तीर्थ और आप जैसा योग्य गुरु स्थावर और जंगम तीर्थ का एक ही स्थान पर संगम श्रावकों के पुण्योदय का फल था। यह चतुर्मास खूब धर्म ध्यान में व्यतीत हुआ। आप के आस पास धर्मप्रेमियों का ही समूह था। वह धर्मप्रेमी जिन्हों ने चार महीने तक सांसारिक धन्धों से मुक्त हो कर धार्मिक क्रिया, ज्ञान और ध्यान में अपना समय व्यतीत करने का निश्चय किया था। वह दिन रात आपकी सेवा में उपस्थित रह कर तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में ही अपना जन्म सफल समझते थे। आपके उपदेश से एकत्रित श्रावकों ने शक्त्यनुसार ब्रह्मचर्यादि व्रतों के पालन करने की प्रतिज्ञा की।

चतुर्मास समाप्त हो गया। कार्त्तिकशुदि पूर्णिमा का

उत्सव आ पहुंचा। वैसे तो प्रति वर्ष सकड़ों नर नारी इस उत्सव में संमिलित होते थे, परन्तु वि० संवत् ४३ का उत्सव अपनी अनोखी विशेषता रखता था। आपके गुणों से आकर्षित होकर इस वर्ष हजारों की संख्या में स्त्री पुरुष आये। पंजाब, मारवाड़, कच्छ काठियावाड़, गुजरात और बंगाल के प्रान्तों से लग भग पैतीस हजार यात्री पधारे। नरसी केशव जी की धर्मशाला में मेला लगा हुआ था। पूर्णिमा के पवित्र दिवस को आप अपने शिष्य परिवार और हजारों मनुष्यों के सहित श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा के लिये पर्वत पर चढ़े। पहाड़ी रास्ते में नीचे और ऊपर मनुष्य ही मनुष्य नजर आते थे। यात्रा के शौक से एक दूसरे के आगे बढ़ रहा था, धक्कों से बचाव के लिए पंजाबी जैनों ने साधुओं के चारों ओर एक चक्र बना दिया और जयकार बुलाते हुए गुरु भक्ति प्रकट की।

पूर्णिमा के उत्सव पर आये हुए श्रावकों के मन में विचार हुआ कि आपको भारतीय श्रीसङ्घ की ओर से आचार्यपद से विभूषित किया जाय। इस आशय को प्रगट करना ही था कि देश देशान्तरों से आये हुए सभ्य जनों ने इस की पुष्टि की। आपकी शासन सेवा प्रशंसनीय थी। आपके क्रान्तिकारी धार्मिक उपदेशों से जैन समाज में जागृति पैदा हो कर कुरीतियों का नाश हो रहा था। इस लिये उत्सव के दूसरे ही दिन प्रख्यात श्रावकों की सभा हुई, जिस में सर्व सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि आप से प्रार्थना की जाय कि आप श्री शत्रुंजय के पवित्र तीर्थस्थान

पर एकत्रित श्रीसङ्घ की इच्छानुसार आचार्य पद ग्रहण करें। प्रस्ताव के अनुसार जब आप से प्रार्थनाकी गयी, आप ने आचार्य पद ग्रहण करने से इनकार कर दिया। और जनता के आग्रह को देख कर कहा कि बड़ों की उपस्थिति में यह शोभा नहीं देता कि मैं आचार्य पद ग्रहण करूं। फिर आचार्य पद देने के लिये भारतीय चतुर्विधसङ्घ का संमिलित होना आवश्यक है। इस स्थान पर आये हुए दो चार सौ नगरों के तीस, पैंतीस हजार यात्रियों को यह अधिकार नहीं कि वह मुझे आचार्य पद दे सकें। आचार्यपद उत्तरदायित्व का स्थान है। मैं नहीं जानता कि मैं इस पद के योग्य हूं या नहीं? उसी समय आप को आचार्य पद देने का प्रस्ताव स्वीकृति के लिये तार द्वारा प्रसिद्ध २ स्थानीय श्रीसङ्घों को भेजा गया, और सब का उत्तर स्वीकृति में आया। सैकड़ों मनुष्य स्वयं संमिलित होने के लिये आ पहुंचे। यद्यपि आप को मालूम हो चुका था, कि जनता की हार्दिक इच्छा आप को आचार्य पद देने की है, फिर भी आपने स्वीकृति न दी। विद्वान् श्रावकों ने एक ऐसी युक्ति दी जिस के सन्मुख आप को झुकना पड़ा। ईसवी की सतरहवीं सदी के अन्त से आचार्य पद तथा पूज्य पद यतियों ने साधुओं से छीन लिया था। जैन इतिहास से प्रतीत होता है कि श्री विजयसिंह सूरि जो भगवान् महावीर के इकसठवें पट्टाधीश हुए, उन के पश्चात् फिर भारतवर्ष में किसी जैन साधु को आचार्य पद प्राप्त न हुआ। श्री विजय सिंह सूरि के पश्चात् बहत्तरवें पट्ट तक बड़ी से बड़ी पदवी जो किसी विद्वान् साधु ने प्राप्त

की वह गणि पदवी थी। सत्यविजय जी, यशोविजय जी आदि विद्वान् साधु केवल गणि पदवी से विभूषित थे। आप के पुण्यप्रभाव से यह अवसर जैन साधु को आचार्य पद देने के लिये सहज मालूम होता था। श्रीसङ्घ के मुखियों ने जब यह प्रश्न आप के सन्मुख रक्खा आप को स्वीकृति के विना कोई मार्ग दिखायी न दिया।

उस समय आचार्य पद के साथ आप के शिष्यपरिवार में से उपाध्याय तथा प्रवर्त्तक पद देने का विचार भी प्रगट किया गया। जब श्रावकों का यह अभिप्राय आप को विदित हुआ आपने मुखियों को वुला कर चेतावनी दी कि आप को आचार्य पद की इच्छा नहीं। समय को ध्यान में रख कर मैंने आचार्य पद के उत्तरदायित्व को स्वीकार किया है। पदों का धारण करना सहज है, परन्तु उत्तरदायित्व भली प्रकार निभाना कठिन है। मैं अपने शिष्यों को पदों के लोभ से वचाना चाहता हूं।

विक्रम संवत् १९४३ मगसर वदि पंचमी का दिन जैन इतिहास में स्मरणीय रहेगा। इस दिन भारतवर्षीय श्रीसङ्घ ने धूम धाम से आप को आचर्य पद से विभूषित किया। इसी दिन नवमे तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ जी का शुभ जन्म हुआ था। उस अवसर पर भी यतियों की ओर से उपद्रव का भय था, परन्तु प्रवन्ध इतना उत्तम था कि यतियों को उपद्रव का साहस तक न हुआ। नरसी केशव जी की धर्मशाला में लोगों का जमघट लगा हुआ था। पदवी के अवसर पर आपका शुभ नाम जैनाचार्य श्रीमद्वि-

जयानन्द सूरि रखा गया।

आचार्य पद से विभूषित हो कर जब आपने पालीताणा से विहार किया तो आप उत्तरदायित्व का भार लिये हुए थे। चतुर्विध सङ्घ का मार्गदर्शक नायक बनना आसान नहीं। एक जैनाचार्य जितना अधिक सन्मान का पात्र है, उतना ही शासन की उन्नति और अवनति का उत्तरदायी है। आप अपना कर्त्तव्य भली प्रकार समझते थे। वैसे तो दीक्षा धारण करने के दिन से ही आप जैन धर्म के प्रचार में लगे हुए थे, आचार्य पद धारण करके आपने और भी अधिक काम किया। धार्मिक कार्यक्षेत्र में यदि साधु सैनिक है, तो जैनाचार्य सेनापति है। आपने जैन शासन की उन्नति के लिए दिन रात परिश्रम किया, जिससे आपके कार्य की प्रसिद्धि देश देशान्तरों में फैल गई।

उन्नीसवीं शताब्दि में युरोप और अमेरिका की जनता प्रायः (materialism) जड़वाद की ओर बढ़ रही थी, जिस से ईसाई धर्म के प्रचार के कार्य में हानि पहुंच रही थी। अमेरिका के पादरी धर्म प्रचार के लिये जनता की रुचि जागृत करने की चिन्ता में थे, और वर्त्तमान समस्याओंपर विचार प्रगट करते हुए संसार को ईसाई मत की ओर आकर्षित करना चाहते थे। उन्हों ने अपना धार्मिक जोश प्रगट करने के लिये अमेरिका के प्रसिद्ध नगर चिकागो में सर्वधर्मपरिषत् करने का प्रबन्ध किया। दो वर्ष इस की तैयारी में लग गये। अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ्रांस, पुर्त्तगाल, स्पेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, जापान, चीन, इटली, डेनमार्क,

हिन्दुस्तान आदि देश देशान्तरों से पचास से अधिक कौमें कान्फरेन्स में सम्मिलित हुईं। कान्फरेन्स के कार्यकर्ताओं ने धार्मिक नेताओं तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों से कान्फरेन्स को सफल बनाने की प्रार्थना की। जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि जी से भी advisory कौन्सल का मेम्बर बनने के लिये प्रार्थना की गई और कान्फरेन्स में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रणपत्र भेजा गया और आप के संक्षिप्त जीवनचरित्र की याचना की गयी। परन्तु आपने मुनिधर्म के प्रतिबंध के कारण अपनी अनुपस्थिति के लिये खेद प्रगट किया। अधिकारिवर्ग से आप की सेवा में फिर पत्र आया कि यदि आप स्वयं सम्मिलित नहीं हो सकते तो अपना प्रतिनिधि और जैनधर्म पर अपना लेख भेजने की कृपा करें, जिसे आप ने स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति के अनन्तर एक और पत्र आया, जिस में लिखा था—

"The paper which the learned Muni ji is preparing will indeed be very welcome and will be given a place in the programme in keeping with the high rank of the author. Although we here in Chicago are at a long distance from you, the name of Muni Atmaram ji is frequently alluded to in religious discussions"

भावार्थ—"जो निबंध मुनि जी (जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि प्रसिद्ध नाम आत्माराम जी) लिख रहे हैं, वह सहर्ष स्वीकार किया जायगा और उसे विद्वान् लेखक के

उच्चपद के अनुरूप ही कार्यक्रम में स्थान दिया जायगा। यद्यपि हम यहां चिकागो में आप से बहुत दूर देश में हैं, तो भी मुनि आत्माराम जी का नाम धार्मिक वाद विवाद (discussion) में प्रायः लिया जाता है।"

पत्र की भाषा से प्रगट होता है कि आप जगद्विख्यात थे।

आपने श्रीयुत वीरचंद राघव जी गांधी बार एटला Hon. Secretary, the Jain association of India, Bombay, को अपना प्रतिनिधि नियत किया। आप गांधी जी की विद्वत्ता, जैनधर्मानुराग तथा समाज सेवा के भाव से परिचित थे। समुद्र पार कान्फरेन्स में अपना प्रतिनिधि भेजना उस समय सहज बात न थी। जैन समाज में समुद्र यात्रा के लिये घोर विरोध था। परन्तु आपने इस विरोध को शान्त कर दिया। प्राचीन इतिहास समुद्र यात्रा सम्बन्धी कथाओं से भरा पड़ा है। सर्वधर्मपरिषत् में जैनधर्म का प्रतिनिधि भेजना आपने आवश्यक समझा। कारण यह था कि ऐसे धार्मिक महा सम्मेलन में सम्मिलित हो कर ही जैनधर्म के महत्त्व का ज्ञान जनता को कराया जा सकता है, और पाश्चात्य देशों में वीतराग भगवान् के पवित्र धर्म का प्रचार किया जा सकता है। जैन धर्म पर किये गये आक्रमणों का उत्तर देने के लिये भी यह उचित अवसर समझा गया। आप की आज्ञा जैनएसोसियेशन ने स्वीकार कर ली।

यद्यपि वीरचंद राघव जी गांधी विद्वान् थे, फिर भी गांधी जी ने आप की सेवा में उपस्थित हो कर जैनधर्म के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा। विश्व

धर्म परिषत् में संमिलित होने वाले जैनधर्म के प्रतिनिधि के लिये जैनतत्त्व विशारद होना एक स्वाभाविक बात थी। इसलिये गांधी जी ने अमेरिका जाने से पहले आपके चरण-कमलों में उपस्थित होकर विशेष तत्त्वज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा और इस उद्देश से आपकी सेवा में अमृतसर आये। कुछ समय तक आपकी सेवा में रह कर ज्ञान प्राप्ति में लीन रहे। विद्वत्ता और तीक्ष्ण बुद्धि के कारण अल्पकाल में जैनधर्म के विषय में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली, और जैनधर्म विषयक जो शङ्कायें मन में थीं, वह सब निवारण कर लीं। इसी अवसर में कान्फरेन्स में भेजने के लिये आपने "चिकागो प्रश्नोत्तर" नाम की पुस्तक तय्यार की। और विदायगी के समय पुस्तक देते हुए वीरचंद राघव जी को आपने निम्नलिखित तीन शिक्षायें दीं—१. ब्रह्मचर्य व्रत पालन, २. शुद्ध आहार और ३. स्वदेशी वस्त्र। गांधी जी ने उपर्युक्त शिक्षाओं का अपनी पाश्चात्य यात्रा में मन वचन और काया से पालन करने का नियम धारण किया, और आप से वासक्षेप और आशीर्वाद लेकर बम्बई पहुंचे, जहां से सकल श्रीसङ्घ ने अत्यन्त हर्ष के साथ जयकारा बुलाते हुए आप को अमेरिका के लिये विदा किया।

सितम्बर सन् १८९३ में कान्फरेन्स का अधिवेशन चिकागो में आरम्भ हुआ और सतरह दिवस तक होता रहा। प्रत्येक प्रतिनिधि ने कार्यवाही के आरम्भ में अपना परिचय दिया। गांधी जी ने अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए इस प्रकार कहा—

"I represent Jainism, a faith older than

Buddhism, similar to it in its ethics, but different from it in its Psychology, and professed by a million and a half of India's most peaceful and law-abiding citizens......................

I will, at present, only offer on behalf of my community and their High Priest, Muni Atmaram ji, whom I especially represent here, our sincere thanks for the kind welcome you have given us. This spectacle of the learned leaders of thought and religion meeting together on a common platform and throwing light on religious problems, has been the dream of Atmaramaji's life. He has commissioned me to say to you that he offers his most cordial congratulations on his own behalf and on behalf of the Jain community for your having achieved the consumation of the grand idea of convening a parliament of Religions."*

भावार्थ—"मैं जैनधर्म का प्रतिनिधि हूं, यह धर्म बुद्ध धर्म से प्राचीन, आचार नियमों में उस से मिलता जुलता, परन्तु साइकालोजी (मनोविज्ञान) में भिन्न है। इस समय जैनधर्म के अनुयायी पन्द्रह लाख की संख्या में शान्तिमय

* Report of the Parliament of Religions Chicago.

और राजधर्मानुरागी भारतवर्ष में विद्यमान हैं। इस समय में अपनी समाज की ओर से तथा उस के महान् गुरु जैनाचार्य श्री मुनि आत्माराम जी की ओर से जिन का भेजा हुआ मैं आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूं, आप लोगों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं। धर्म और दर्शन के विद्वान् नेताओं का एक ही प्लेटफार्म पर इकट्ठे होकर धार्मिक तत्त्वों पर प्रकाश डालना मुनि आत्माराम जी के जीवन का ध्येय रहा है। श्रीजी ने मुझे आज्ञा दी है, कि मैं विशेषतः उनकी ओर से तथा सकल जैन समाज की ओर से सर्वधर्म सम्मेलन के आयोजन सम्बन्धी उच्च विचार और उस की सफलता पर आप सज्जनों को बधाई दूं।

कान्फरेन्स में गांधी जी ने जैनधर्म के सबन्ध में प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिस पर एक प्रसिद्ध अमेरिका के पत्र में निम्नलिखित अभिप्राय प्रकाशित हुआ—

A number of distinguished Hindu scholars, philosophers and religions teachers attended and addressed the Parliament, some of them taking rank with the highest of any race for learning, eloquence and piety. But it is safe to say that no one of the oriental scholars was listened to with greater interest than the young layman of the Jain community as he declared the ethics and philosophy of his people."†

†Chicago Prashnottara.

भावार्थ—कई एक प्रसिद्ध हिन्दू विद्वान् दार्शनिक तथा धार्मिक नेताओं ने कान्फरेन्स में भाग लिया और अपने अपने भाषण दिये। उन में से कुछ एक विद्वान् तो अपनी विद्वत्ता, वाग्मिता तथा पवित्रता में किसी भी जाति के बड़े से बड़े विद्वान् के साथ टक्कर ले सकते थे। यह बात निश्चय से कही जा सकती है कि जिस अभिरुचि से जैन नवयुवक का जैन धर्म के तत्त्वज्ञान और आचार सम्बन्धी भाषण सुना गया, उस तरह किसी और पूर्वीय विद्वान् का नहीं सुना गया।

अमेरिका में दो वर्ष तक रह कर वीरचंद राघव जी गांधी ने भिन्न २ स्थान—बोस्टन, वाशिङ्गटन, न्यूयार्कादि नगरों में पांच सौ पैंतीस भाषण दिये। जैन धर्म की शिक्षा के लिये गांधी जी ने अमेरिका में पाठशालायें स्थापित कीं। वाशिङ्गटन में "गांधी फिलासफिकल सोसायटी" स्थापित हुई। इस प्रकार धर्मोपदेश से प्रभावित होकर हजारों नर नारियों ने मांसभक्षण का त्याग कर दिया, कितने ही मनुष्यों ने ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गीकार किया। इसी प्रकार इङ्गलैण्ड में भी धर्म प्रचार का कार्य किया। वहां १८९५ ईसवी में रायल एशियाटिक सोसासटी के प्रबन्ध में लार्ड मारले की अध्यक्षता में भाषण दिये और उक्त सोसायटी के मेम्बर नियुक्त हुए। इस प्रकार फ्रान्स और जर्मनी में व्याख्यान देते हुए गांधी जी जुलाई सन् १८९६ में वापिस बम्बई पधारे, जहां एक प्रसिद्ध विद्वान् की भान्ति आपका हार्दिक स्वागत किया गया। गांधी जी बम्बई से सीधे चिकागो कान्फरेन्स का

वृत्तान्त तथा अपनी अमेरिका और युरोप यात्रा का लाभ अपने मुख से सुनाने के लिये अंबाला आये। गांधी जी ने आचार्य श्री जी को बतलाया कि पाश्चात्य देशों की जनता सत्य ग्रहण करने के लिये किस प्रकार उत्कण्ठित है. परन्तु उन्हें सत्यधर्म का उपदेश सुनाने वाला नहीं है। आचार्य श्रीजी ने गांधी जी के कार्य की प्रशंसा की और भविष्य में इसी प्रकार जैनधर्म की जागृति के लिये ताकीद की। चिकागो कान्फरेन्स के निमित्त से जैनाचार्य श्रीमद्विजया-नन्द सूरि जी को वीरचंद राघव जी के द्वारा पाश्चात्य देशों में जैनधर्म का सन्देश पहुंचाने का अवसर मिला और पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान जैनतत्त्वों की ओर आकर्पित किया।

जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि जी [स्वामी आतमाराम जी महाराज] के जीवन के अन्तिम वर्ष पंजाव में व्यतीत हुए। आप के सदुपदेश से कई एक जैन मन्दिर वन चुके थे। आप ही ने उन की प्रतिष्ठा करायी। ऐसे अवसरों पर एकत्रित होने वाले जैनों को प्रेम और सङ्गठन का उपदेश दिया और सामाजिक सुधार की आवश्यकता जतलायी। अमृतसर का प्रतिष्ठा महोत्सव खास उल्लेखनीय है। इस अवसर पर अमृतसर में तीन हजार से अधिक जैन नर नारी एकत्रित हुए थे। आचार्य श्री जी ने धर्मोपदेश दिया, जिस का सार यह था कि मुझे पंजाव देश से हार्दिक प्रेम है, दिन रात यह ही चिन्ता है कि श्रीसंघ पंजाव किस प्रकार दृढ और वलवान् हो। मनुष्यमात्र का कर्तव्य सत्य का प्रकाशन है। जैनधर्म की प्राप्ति शुभ कर्मों का उदय है। अपना जीवन

धर्ममय बनाओ। मुझे विश्वास है कि अब कोई शक्ति श्रीसंघ पंजाब को सम्यक्त्वदर्शन से डिगमगा नहीं सकती। आप के भ्रातृभाव को देख कर मुझे आनन्द प्राप्त हो रहा है। स्वधर्मी भाई का सम्बन्ध सगे भाई से भी अधिक है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्मी भाई की सेवा तन मन और धन से करने का प्रण करना चाहिये। दसे बीसे, ओसवाल, खण्डेलवाल, अग्रवाल आदि सब भाई भाई है। भिन्न २ जातियें और सम्प्रदाय एक ही उद्यान के पुष्प हैं। याद रक्खो! श्रीसङ्घ पंजाब तब ही बलवान् और शक्तिशाली होगा जब कि व्यर्थ मतभेद दूर हो कर परस्पर प्रेम और सहयोग होगा। उन्नति के लिये श्रीसङ्घ पंजाब का सङ्गठित होना अत्यावश्यक है। आपका प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि यदि किसी एक स्थान पर सहायता की जरूरत हो, तो सब भाई वहां एकत्रित हो जावें। आपने यह भी कहा कि साधुओं की सहायता पर ही नहीं रहना चाहिये, श्रावकों को स्वयं सूत्रों का अभ्यास करना चाहिये। यदि श्रावक विद्वान् होंगे, तो साधुओं को गलती करने का साहस नहीं होगा। बच्चों के शिक्षण के लिये स्थान स्थान पर पाठशालाओं का स्थापित करना अत्यावश्यक है। कई एक बातें रस्मोरिवाज के सम्बन्ध में भी कहीं। जैन संस्कारविधि को प्रचलित करने के लिये जोर दिया और बलपूर्वक मिथ्यात्वका निषेध किया। विवाह आदि शुभ अवसरों पर बहुत खर्च को कम करने का उपदेश दिया।

होशियारपुर के प्रतिष्ठामहोत्सव पर अमृतसर से

भी अधिक श्रावक एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर सामाजिक सुधार के लिये भरसक प्रयत्न किया गया था। आप पंजाब के अल्पसंख्यक जैनों की भावी विवाह सम्बन्धी कठिनाइयों का अनुभव कर रहे थे। और जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। आप ने बाल विवाह और पर्दे की प्रथा पर स्पष्टतया अपने विचार प्रकट किये। जीरा और अंबाला के प्रतिष्ठा महोत्सव भी विशेषतः लाभदायक सिद्ध हुए। आपके पवित्र हाथों से अन्तिम प्रतिष्ठा महोत्सव संखत्रा के मन्दिर का हुआ।

जेठवदि ६ विक्रमसंवत् १८५३ को श्री आचार्य जी संखत्रा से रवाना हुए। चतुर्मास निकट था। गरमी प्रतिदिन अधिक हो रही थी। फिर भी चतुर्मास आरम्भ होने से पहले आपने पसरूर, स्यालकोट, जम्मू आदि नगरों का भ्रमण करने का निश्चय किया। किला सोभासिंह होते हुए पसरूर पधारे। यद्यपि आप का निश्चय कुछ दिन यहां उपदेश देने का था, परन्तु आप कालवश अपनी अभिलाषा को पूर्ण न कर सके। पसरूर से गुजरानूवाला की ओर लौटे और मार्ग में दमकशी की पीड़ा हो गई। गुजरानूवाला में धूमधाम से आप का प्रवेश हुआ। रोगवृद्धि के कारण श्रावकों के मन चिन्तित थे। सेवकों ने प्रार्थना की कि किसी निपुण डाक्टर से चिकित्सा कराई जावे। आपने इस ओर कुछ ध्यान न दिया। यद्यपि रोग बढ रहा था, फिर भी आप के प्रसन्न मुख पर मुसकराहट खिल रही थी और आंखों से ज्योति टपकती थी। अपने कष्ट को कर्मों

का फल विचार करके शान्तिपूर्वक सहन कर रहे थे, और अपनी दैनिक क्रिया में साधारणतः लीन थे। गुजरान्वाला में आप का आगमन सोलह वर्ष पश्चात् हुआ था, इस लिये आप के दर्शनाभिलाषी बहुसंख्या में प्रतिदिन आते थे। दिन रात पण्डित और मौलवियों से वार्तालाप में व्यतीत होता था। जेठ सुदि सप्तमी के दिन रात के प्रतिक्रमण से निवृत्त हो कर लेट गये, थोड़ी देर विश्राम करके उठ बैठे और ध्यान में मग्न हो गये। ध्यान समाप्त होने पर निकट सोते हुए साधुओं को जगाया और कहा कि आज मेरी तबीयत कुछ बिगड़ी हुई मालूम देती है। झट शिष्यपरिवार एकत्रित हो गया। आपने उन सब को सम्बोधित करके कहा कि लो अब मेरा आप से जुदा होने का समय आ पहुंचा है। अगर मैंने मन, वचन और काया से किसी का दिल दुखाया हो, तो उसके लिये मैं क्षमा मांगता हूं। शिष्य परिवार से मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है। कि आप मेरे जीवन के मिशन को एकता और ज्ञान से सफल बनावें। मुझे वीतराग श्री अर्हन्त और सिद्ध भगवान् का, जिन्हों ने कर्मरूपी शत्रुओं का नाश कर दिया है कल्याणकारी शरण है, मुझे मोक्ष देने वाले पवित्र जैन धर्म का शरण है। इस प्रकार शरण लेते हुए फिर ध्यान लगा लिया और मन को एकाग्र करके सूत्रों का उच्चारण करने लगे। एकवार फिर अपनी आंखों की ज्योति को साधुओं और श्रावकों पर डाला और तीनवार अर्हन् शब्द कह कर कहा "लो भाई अब हम चलते हैं और सब को क्षमाते हैं"। धन्य

है आपका दृढ विश्वास ! अन्तिम समय भी आपने परम-पवित्र नमस्कार महामन्त्र का ध्यान करते हुए अपनी अमर आत्मा को विनश्वर शरीर से पृथक् किया। शोक ! महा-शोक ! जैन समाज का सिरताज क्रान्तिकारी आचार्य समाज को वेताज करके हमें शोकसागर में छोड़ गये।

शासनसेवा

जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरि की सब से बड़ी जैन शासनसेवा प्रमादग्रस्त जैनों को जागृत करके, उनमें जैनत्व के भाव उत्पन्न करना था। आपके दीक्षा धारण करने के समय जैन समाज की अवस्था अत्यन्त शोकजनक थी। जैनी मिथ्यादृष्टि देवी देवताओं के उपासक बने हुए थे। आपने जैनों की श्रद्धा को दृढ़ बनाने के लिये उन पर जैन धर्म का स्वरूप प्रकट किया और मिथ्यातत्त्व का निषेध करके, लोगों को सम्यग्दृष्टि बनाया।

आप सत्य के प्रेमी थे और सत्य धर्म के प्रचार के लिये सदा कटिबद्ध रहे। तत्त्वपरीक्षा आपका श्रेष्ठ गुण था। सत्य की खोज में घर बार त्याग किया। थोड़े समय में स्थानिकवासी साधुओं में शुद्धाचार तथा ज्ञान बल से प्रसिद्ध हो गए। और मान प्रतिष्ठा का पारावार न रहा। परन्तु सत्य के आचरण के लिये, जब आपको समुदाय से बाहर निकल कर अपने हार्दिक विचारों के प्रचार के लिये कठिनाइयां सहन करनी पड़ीं, तब आपने किंचित परवाह न की और अपने क्रान्तिकारी भाव का पूरा सबूत दिया। रूढ़ियों के बन्धन काट कर, आपने अपने अनुयायियों के लिये मार्ग साफ कर दिया और निर्भयता, धीरता और

वीरता का आदर्श दूसरों के अनुकरण के लिये छोड़ गए।

आपने मूर्तिपूजा का प्रचार ऐसे समय में किया जब कि चारों ओर से इसका घोर विरोध हो रहा था। आपने भारतवर्ष के प्रचीन देवपूजन की प्रथा को जारी करके शासन की एक बड़ी सेवा की है। आप के उपदेशों का यह प्रभाव हुआ कि जहां मूर्त्तिपूजा और जिनेश्वर भगवान् के मन्दिरों की निन्दा हो रही थी, और अज्ञानता के कारण साधारण जनता प्रभुभक्ति से घृणा करने लगी थी, वहां फिर विशाल जैन मन्दिर स्थापित हो गए। और हजारों नर नारियों को जिनेश्वर भगवान् की शान्त मूर्त्ति का दर्शन करके शान्ति प्राप्त करने का अवसर मिला। आज आचार्य श्री जी की कृपा से ही पंजाब देश में विशाल और रमणीय देवगृह देखने में आ रहे हैं, और तीर्थंकरदेव की प्रतिमा का पूजन हो रहा है। पंजाब से बाहर मारवाड़, गुजरात और काठियावाड़ आदि प्रान्तों में भी आपके उपदेश से प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ और उनकी देखरेख का उचित प्रबन्ध किया गया।

आपकी एक बड़ी शासनसेवा प्राचीन शास्त्र भण्डारों की रक्षा करना था। जेसलमेर, पाटन, खंभात, अहमदाबाद, राधणपुर आदि नगरों में भूमिगृह में जैनाचार्यों के रचित अमूल्य ग्रन्थ खराब हो रहे थे। भूमिगृह नमी के कारण ऐसे हो रहे थे, जैसे किसी ने छिड़काव किया हो। बहुत से पुस्तक ताडपत्रों पर लिखे हुए थे, कई एक दीमक ने खा लिये, जो बाकी बचे उनके अक्षर मिट रहे थे। पुस्तक

भण्डार के एक संरक्षक ने सगर्व कहा कि उसके पास पांच हजार पुस्तकें थीं, कि जिन में से पन्द्रह सौ को दीमक खा चुकी है। आपने कहा धिक्कार है, अगर यही दशा रही तो थोड़े ही समयमें इन की रक्षा की आवश्यकता नहीं रहेगी। आपके सदुपदेश से भूमिगृह से पुस्तकों को निकलवाया गया। नष्ट होते हुए ग्रन्थों की नकल करायी गई, और हजारों पुस्तकों की जिल्दें बंधवाकर लाइब्रेरियों में रक्खीं गयीं। आप न केवल स्वयं शास्त्रभण्डारों की रक्षा के लिये कटिबद्ध थे, बल्कि आपने अपने विद्वान् शिष्यों को आज्ञा दे रखी थी कि वे भिन्न भिन्न भण्डारों के सूचीपत्र तयार करें। जेसलमेर के भण्डार की अवस्था को देख कर आप के शिष्य श्री हंसविजय जी ने पत्र द्वारा भण्डार के उद्धार के लिये चतुर्मास की आज्ञा चाही, जिस पर आपने लिखा कि पुस्तकभण्डारों के उद्धार के लिये जेसलमेर में एक चतुर्मास तो क्या बारह चतुर्मास तक करने की मेरी ओर से आज्ञा है। भंण्डारों की रक्षा का काम सहज काम न था। संकुचित विचार के जैनों ने इसका घोर विरोध किया। भण्डारों को बड़े बड़े ताले लगा दिये, जो आपने संरक्षकों को उपदेश द्वारा शान्त करके खुलवाये।

आप स्वयं विद्वान् थे और विद्वानों का आदर करते थे। जैन साहित्य के रिसर्च के काम में जब कभी आप से सहायता के लिये प्रार्थना की गई आपने उसके लिये पूरा यत्न किया। बंगाल एशियाटिक सोसायटी के मानद मन्त्री

डाक्टर ए. एफ. रोडेल्फ हार्नलने आपसे बीसों प्रश्न पूछे और अपनी पुस्तक उपासकदशाङ्ग लिखने में सहायता ली। सहायता के लिये कृतज्ञता प्रकट करते हुए डाक्टर हार्नल ने सेठ मगनलाल जी अहमदावाद-निवासी को इस प्रकार लिखा।

CALCUTTA

My dear Sir, 4th Sept. 1888.

I am very much obliged to you for your kind letter of the 4th inst. also to Muni Atmaram ji for his very full replies. Please convey to the latter the expression of my thanks for the great trouble he has taken to reply so promptly and so fully to my questions. His answers are very satisfactory."

भावार्थ—मैं आपके पत्रके लिये कृतज्ञ हूं। मैं मुनि आत्माराम जी का इन के सम्पूर्ण उत्तरों के लिये आभारी हूं। कृपया मेरा धन्यवाद उन्हें पहुंचा देवें। उन्होंने कष्ट उठाकर शीघ्र ही सम्पूर्ण उत्तर दिये हैं, जो कि अति सन्तोषजनक हैं। उपासक दशाङ्ग की भूमिका में इस प्रकार लिखा है।

In a third appendix I have put together some additional information that I have been able to gather since publishing the several facsimile. For some of this information I am indebted to Muni Atmaram ji, (Ananda vijaya ji) the well-known and highly respected sadhu

of the Jain community throughout India, and author of (among others) two very useful works in Hindi, the Jain Tattvadarśa, mentioned in note 276 and the a Ajnanatimirabhaskara. I have been placed in communication with him through the kindness of Mr. Magana Lal Dalapataram. My only regret is that I have not the advantage of his invaluable assistance from the very beginning of my work.

भावार्थ—तीसरे परिशिष्ट में मैंने कुछ अधिक सूचनाएं प्रकट की हैं। जिनको में कई प्रतियां प्रकाशित होने के पश्चात् एकत्र कर सका हूं। इस विज्ञप्ति के लिये मैं मुनि महाराज श्री आत्माराम जी (आनन्द विजय जी) जो सकल भारतवर्ष में जैनों के प्रसिद्ध तथा माननीय आचार्य हैं, आभारी हूं। श्री जी कई एक पुस्तकों के लेखक हैं। जिनमें से जैन तत्त्वादर्श, (जिसका ज़िकर नोट-२७६ में है) और अज्ञानतिमिरभास्कर, दो लाभकारी हिन्दी पुस्तकें हैं। मेरा पत्र व्यवहार आप से सेठ मगनलाल दलपतराम जी द्वारा हुआ। मुझे केवल इतना ही शोक है कि मैं पुस्तक के आरम्भ ही से आप की सहायता का लाभ न उठा सका।

हार्नल साहिब ने, अपनी उपर्युक्त पुस्तक आचार्य श्री विजयानन्द जी को भेंट की है। और इसी पुस्तक में श्री आचार्य जी की स्तुति इन श्लोकों से की है—

दुराग्रहध्वान्तविभेदभानो !
हितोपदेशामृत सिन्धुचित्त ! ।
सन्देहसन्दोह निरासकारिन्,
जिनोक्तधर्मस्य धुरंधरोऽसि ॥१॥
अज्ञानतिमिरभास्करमज्ञानंनिवृत्तये सहृदयानाम् ।
आर्हततत्त्वादर्शं ग्रन्थमपरमपि भवानकृत ॥२॥
आनन्दविजय श्रीमन्नात्माराम महामुने ।
मदीयनिखिलप्रश्नव्याख्यातः शास्त्रपारग ! ॥३॥
कृतज्ञता चिह्नमिदं ग्रन्थसंस्करणं कृतिन् ।
यत्नसम्पादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ॥४॥

भावार्थ—आपने अन्धकार में पड़े हुए जीवों को प्रकाश में लाकर, उपदेशामृतपान के द्वारा, उनके सब भ्रम और सन्देह नष्ट किये हैं। अतः आप ही भगवान् जिन के प्रचलित किये हुए धर्म के कर्णधार हैं। सहृदय सज्जनों के दुःख निवारण की खातर ही आपने 'अज्ञानतिमिरभास्कर तथा जैन तत्त्वादर्श पुस्तकें रची हैं। हे श्री आनन्दविजय जी (श्री आत्माराम जी) सब शास्त्र विज्ञ ! मेरे प्रश्नों की भली प्रकार व्याख्या करके प्रसन्न किया है। अतः मैं यत्न पूर्वक सम्पादन किये इस ग्रन्थ को कृतज्ञता प्रकट करने की खातिर श्रद्धा पूर्वक भेंट करता हूं।

केवल हार्नल साहिब की बात नहीं। प्रतिदिन जिज्ञासु लोग शंका निवारणार्थ आपकी सेवा में उपस्थित होते थे। और युक्ति युक्त उत्तर से संतुष्ट होकर, आपके अनुरागी बन जाते थे। आपका उपदेश चित्त में असर कर जाता था। आपकी मधुर वाणी से श्रोताओं का हृदय जैनधर्म की ओर

आकर्षित होता था। आपके मनोहर व्याख्यान समयानुकूल उदाहरणों से भूषित हुआ करते थे।

आचार्य श्री ने जैन शासन की सेवा न केवल अपनी वक्तृताओं द्वारा ही की, अपितु अपनी ओजस्विनी लेखन-शक्ति का भी पूरा प्रयोग किया। पाठकों के ज्ञान के लिये आप की प्रसिद्ध पुस्तकों की सूचि परिशिष्ट में दी गई है। जैसे आप जैन शास्त्रों के विद्वान् थे, वैसे ही वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद् पुराणादि अन्य शास्त्रों के भी ज्ञाता थे। जिस का परिचय आपने "अज्ञानतिमिरभास्कर, तत्त्वनिर्णयप्रसाद" आदि पुस्तकों में दिया है। जैनधर्म पर किए गए आक्षेपों का आपने सबको मुंहतोड़ उत्तर दिया है। सम्वत्१९७१ की ज्येष्ठ शुदि अष्टमी को आत्मानन्द जयन्ती के समय लाल बाग बम्बई में भाषण करते हुए श्री विजयवल्लभ सूरि ने इस प्रकार कहा था "अहमदाबाद में शान्ति सागर को जवाब देने में ये महात्मा। तीन थुई वालों को जवाब देने के लिये ये महात्मा। स्थानकवासियों को सम्यक्त्वसार नामक पुस्तक का उत्तर देने के लिये ये महात्मा। स्वामी दयानन्द सरस्वती के जैनधर्म पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देने के लिये ये महात्मा। और वैदिकधर्म वालों को जवाब देने के लिये भी ये ही महात्मा थे*"। जैन दर्शन की महत्ता और प्राचीनता को ऐतिहासिक दृष्टि से आप ही ने सिद्ध किया, आपकी रचित पुस्तकें सारगर्भित, तत्त्व से भरी हुई, सादा और सरल भाषा में हैं।

---

* 'आदर्श जीवन' कृष्णलाल वर्माकृत पृष्ठ १५५

तरह मेरा मन भी आपके चरण कमलों का आशक है, प्रेमी है। हे प्रभु! प्रकृति के जाल से मुक्त करो जो कि संसार की नाट्यशाला में कई प्रकार के स्वांग भराकर मुझे बहुत नचा चुकी है। हे जगदीश! संसार में जिन को मैंने अपने समझ रखा था, वे सब आंख फेर गये, तुम्हारे बिना मेरा और कोई वन्धु नहीं। अब मैं और किस से प्रेम करूं? मेरे तो आप ही सर्वथा रक्षक हैं। आप हमारे सिर के ताज तथा हृदय के हार हो। भगवन्! शीघ्र दया करके भव सागर से पार करो।

जिस समय आपने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया उस समय सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था। बालविवाह, वृद्ध विवाह बहुविवाह और नानाविध समाज हानिकारक प्रथाएं जारी थीं। समाज के गण्यमान्य व्यक्ति भी इस विषय में चुप्पी साध रहे थे। कोई इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाता था। तब आपने अपने क्रान्तिकारी विचारों से आन्दोलन किया। जिसके परिणाम स्वरूप सभाएं सर्वत्र इन कुरीतियों को हटाने में समर्थ हुईं। जिन भिन्न जैन उपजातियों में रोटी वेटी का व्यवहार तो कहां, परस्पर सदा संघर्ष ही रहा करता था। उनका मेल कराकर सारी जाति को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। और परस्पर रोटी वेटी व्यवहार की आवश्यकता जतलाई।

गुजरात काठियावाड़ आदि प्रान्तों में, जहां पहले ही जैन मन्दिर बहु संख्या में हैं, लोग नाम की खातिर और नये मन्दिर बनाना जैनमत की भक्ति समझते थे। और ज़ीमन

वार का रिवाज आम था। हजारों की संख्या में जैनी लोग इकट्ठे होकर खूब मिष्टान्न उड़ाते थे। इस प्रकार लाखों रुपया धर्म के नाम पर व्यय होता था। जिसका समाज को किंचित् लाभ न था। आपने असल तत्त्व का विवरण करते हुए जोर दिया कि मन्दिर वहां बनने चाहियें, जहां के भक्त जन आवश्यकता होते हुए जैन मन्दिर बनवाने में असमर्थ हों, और स्वधर्मी-वत्सल का तत्त्व बताते हुए कहा कि उन श्रावक-पुत्रों की सहायता करना जरूरी है जो कि किसी कष्ट में पड़े हैं—वे रोजगार को रोजगार पर लगाना दीन अनाथों का पोषण, तथा रोगी जनों की सेवा आदि इसी को असली स्वधर्मी-वत्सल मानकर आपने प्रचार किया। आपका कार्यक्षेत्र जैनों तक ही सीमित न था बल्कि आपका प्रयत्न सकल हिन्दु समाज के सुधार का था। आपने बहुत से हिन्दु वीरों को इसाई बनने से बचाया। आपका Temperance काम सराहनीय है। आपके उपदेश से हजारों नर नारियों ने मदिरा मांस तथा जुआ आदि व्यसनों से छुटकारा पाया।

आचार्य श्री कहा करते थे कि जिस प्रकार अन्धकार के नाश के लिये प्रकाश की, जरूरत है, वैसे ही अज्ञानतम के के नाश के लिये शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। ज्ञानके बिना मनुष्य पशु तुल्य है। आप स्वयं विद्वान् थे और विद्वानों का आदर करते थे। जैनियों की अज्ञानता को देखकर आपको बड़ा कष्ट होता था। इसी कारण आप स्थान स्थान पर पाठशालायें और विद्यालय स्थापित करने का उपदेश दिया करते थे।

आपने कहा है "जैसे जैन लोग अन्य कामों में लाखों रुपये खर्चते हैं, तैसे जीर्ण पुस्तकों के उद्धार कराने में किंचित् नहीं खर्चते हैं। और न कोई जैनशाला बनाके अपने लड़कों को संस्कृत, धर्मशास्त्र पढ़ाते हैं। और जैनी साधु भी प्रायः विद्या नहीं पढ़ते हैं। क्योंकि उन्हें खाने को ताजा माल मिलता है। वे पढ़कर क्या करें? कितने एक यति लोग इन्द्रियों के भोग में पड़ रहे हैं, सो विद्या क्यों कर पढ़ें। विद्या के न पढ़ने से तो लोग इनको नास्तिक कहने लग गये हैं। फिर भी जैन लोगों को लज्जा नहीं आती है। जैन लोग चूरमे के लड्डू और दूधपाकादिक के खाने के वास्ते तो हजारों इकट्ठे हो जाते हैं। परन्तु पुस्तकों के उद्धार के लिये सोए पड़े हैं। हमारे लिखने का प्रयोजन तो इतना ही है, कि जैन लोगों को उचित है, कि सर्व देश वाले मिल कर पाटन, जैसलमेर, खंभात, प्रमुख के पुस्तक भण्डारों का जीर्णोद्धार करावें। और बड़े २ शहरों में जैन शाला बनाके अपने लड़कों को संस्कृत आदि विद्या पढ़ावें*"। आप स्वयं अंग्रेजी पढ़े हुए न थे। फिर भी राज-भाषा होने के कारण समयानुसार अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता का अनुभव करते थे। संस्कृत और प्राकृत के शिक्षण के लिये अधिक जोर था। आपके उपदेश से कई एक स्थानों पर पाठशालाएं स्थापित हुई। और आपका शिष्य परिवार ज्ञान प्राप्ति के लिये जुट गया। साधुसमुदाय में सुधार करके आपने शासन की अपूर्व सेवा की है। साधुवर्ग अपने विद्याभ्यास

* अज्ञानतिमिरभास्कर द्वितीयखण्ड पृष्ठ ३-४ ।

के कर्तव्य से विमुख होकर आलसी बन रहा था। ऐसे समय में आपने स्वयं शास्त्राभ्यास करके उसके सामने आदर्श रखा।

श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देशाई ऐडवोकेट हाईकोर्ट बम्बई ने लिखा है—"यशोविजय जी उपाध्याय के बाद श्रुताभ्यास लगभग बन्द जैसा पड़ा था, उसे आत्माराम जी महाराज ने शुरू किया और बहुश्रुतेपन का स्थान सम्भाल लिया। तब से अर्थात् लगभग डेढ़ सौ वर्ष के इतिहास में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों मतों में एक महान् विभूति आत्माराम जी ही नजर आते हैं। उनके इस पदवी प्राप्त करने के विशिष्ट कारण ये हैं—उन में अचल श्रद्धा और शासन के प्रति अनुराग था। परन्तु विशेष कारण यह था कि उन्होंने बुद्धि द्वार खोल दिया, और जितना भी प्राप्त हो सके उतना सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का पुरुषार्थ किया। उन्होंने अपनी बुद्धि को शास्त्रव्यायाम की कसौटी पर जिन्दगी भर परखा। जिस समय छपी हुई पुस्तकें बहुत ही थोड़ी थीं, उस समय जैन, जैनेतर दर्शनों की अनेक विषयों की इतनी पुस्तकें पढ़ डालीं, जिनके सम्बन्ध में मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। जिस समय जैनपरम्परा में ऐतिहासिक दृष्टि आई भी न थी, और जैन पुस्तकों के उपरान्त शिलालेख, ताम्रपत्र, भूगोल, भूगर्भ आदि विद्याओं का भी बहुश्रुतपने-विद्वत्ता में स्थान है, यह कल्पना भी उत्पन्न न हुई थी, उस समय सब साधन मिले हुए जानकर ऐतिहासिक दृष्टि से जैन दर्शन की प्राचीनता और महत्ता

स्थापित करने का प्रयत्न इन्होंने ही पहले पहल किया था। ऐसा विशाल वाचन, अद्भुत स्मरणशक्ति, और उत्तर देने का कौशल इन के स्मरणीय पुस्तकों के पद पद पर नजर आते हैं। इस बुद्धियोग ने उनको विशिष्ट दरजा दिया है*।

---

* जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ६८९ पैरा १००९



आचार्य श्री जी के पश्चात्

जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरि जी महाराज वर्तमान जैन समाज की त्रुटियों का अनुभव कर रहे थे। और वे पाश्चात्य जातियों के उत्थान के साधनों से भी भली प्रकार परिचित थे। और उन्हें उपयोग में लाकर जैनों में सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति पैदा करना चाहते थे। पंजाब प्रान्त में प्रायः देव मन्दिर तैयार हो चुके थे, स्थान स्थान पर पुस्तक-भण्डारों की व्यवस्था भी ठीक हो रही थी। केवल उचित केन्द्रों पर शिक्षण संस्थाओं के स्थापन करने का कार्य बाकी था। वे अपने शिष्य परिवार को भिन्न भिन्न धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में विभक्त करके शासन सेवा के लिये अहर्निश कटिबद्ध थे। परन्तु शोक कि आपकी आयु ने साथ न दिया! आपका स्वर्गवास ऐसे समय में हुआ जब कि आप अपने निश्चित कार्य को बड़े पैमाने पर आरम्भ करने वाले थे।

आपके शिष्य परिवार में योग्य विद्वान्, अनुभवी तथा प्रभावशाली साधुओं की कमी न थी। आचार्य श्री विजय कमल सूरि, श्री विजयवल्लभ सूरि, उपाध्याय श्री वीर विजय जी, प्रवर्तक श्री कान्ति विजय जी, शान्तमूर्ति श्री हंस विजय जी आदि मुनिराज और इनका शिष्य प्रतिशिष्य परिवार विद्यमान था। आचार्य श्री के स्वर्गधाम पधारने ही वह

एकचित्त होकर उनके ध्येय-मिशन की पूर्ति के लिये जुट गया आपके शिष्यों की एक ही हार्दिक इच्छा थी और वह थी आचार्य श्री के ध्येय को सफल करना। अतः शीघ्र ही श्री विजयवल्लभ सूरि जी और अन्य मुनियों की प्रेरणा से श्री संघ पंजाब ने निम्नलिखित योजना* को व्यवहार में लाने का निश्चय किया।

१. श्री आत्म सम्वत् प्रारम्भ करना।

२. गुजरांवाला में गुरु देव के समाधि स्थान पर विशाल आत्मानन्द जैन भवन बनवाना।

३. प्रायः सब ही नगरों में आत्मानन्द जैन सभाएं स्थापित करना और उन्हें एक महासभा द्वारा संगठित करना।

४. उचित केन्द्रों पर पाठशालाएं जारी करना और एक जैन कालेज (महाविद्यालय) स्थापन करने के लिये उद्यम करना। इसी विचार को लक्ष्य करके "पाई फण्ड" जारी किया गया। जिसका उद्देश्य यह था कि प्रत्येक जैन कुटुम्ब दैनिक एक पाई महाविद्यालय के लिये अर्पण करे।

५. आत्मानन्द जैन पत्रिका प्रकाशित करना।

आत्म सम्वत् लिखा जाने लगा, आत्मानन्द जैन भवन की नींव विक्रम सम्वत् १९५३, आत्म सम्वत् १ में समाधि स्थान पर रख दी गई। जो इस समय गुजरान्वाला में आत्मानन्द जैनभवन के नाम से विशाल रूप में दिखाई दे रहा है। शिष्य परिवार के उद्यम से सभी नगरों तथा ग्रामों में आत्मानन्द जैन सभाएं बन गईं। और यत्न से धर्म कार्य

* 'आदर्शजीवन' कृष्णलाल वर्माकृत पृष्ठ १०२,१०३।

होने लगे। फिर इन सभाओं को संगठित करने के लिये, आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब की स्थापना की गई। जिस के उद्देश्य ये हैं—

(क) *जैन समाज में परस्पर प्रेम बढ़ाना और संगठन करना।

(ख) महासभा के अधीन पंजाब के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में सभाएं बनाना।

(ग) जैन समाज की उन्नति के साधन विचार कर प्रयोग में लाना।

(घ) रीति रिवाज को सुधार कर अपव्यय को दूर करना।

(ङ) विद्या प्रचार द्वारा जैन धर्म को प्रकाश करना।

(च) जैन समाज के अधिकारों की रक्षा के लिये प्रेस और प्लेटफार्म को शक्तिशाली बनाना, और संघशक्ति का सम्पादन करना।

(छ) जैन तीर्थों का उद्धार करना।

(ज) जैन त्योहारों को मनाना।

(झ) "अहिंसा परमोधर्मः" के सिद्धान्त को सन्मुख रखते हुए अनाथ बालकों, और दुःखी विधवाओं की शिक्षा तथा निर्वाह का प्रबन्ध करना।

महासभा ने श्री संघ पंजाब को एक प्लेटफार्म पर खड़ा करके इसके सम्मान को बढ़ाया है। और युवकों के हृदय में समाजसेवा के भाव, और जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न

---

* नियमावली श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब।

की है। रीतिरिवाज के सुधार में भी महासभा को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई है। भेरा के प्रचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार भी महासभा ने कराया है। श्री आत्मानन्द जैनगुरुकुल पंजाब की स्थापना में महासभा का विशेष भाग है। किला सोभासिंह के मन्दिर का प्रबन्ध भी महासभा के द्वारा होता है। बाढ़ पीड़ित प्रदेशों में सहायता का कार्य भी महासभा द्वारा भली प्रकार से हुआ है। श्री शत्रुञ्जय तथा केशरियानाथ जी तीर्थ के बारे में श्री संघ पंजाब की आवाज को भी महासभा ने शासकों के कानों तक पहुंचाया। और पंजाब के जैनों को इस विषय की आवश्यक सूचनाएं दीं। इस महासभा का उत्सव प्रतिवर्ष भिन्न २ स्थानों पर होता है। जहां वर्तमान स्थिति पर नेता विचार करते हैं। पंजाब के जैन पुस्तक-भण्डारों का प्रमाणिक सूचीपत्र यह सभा पंजाब यूनिवर्सिटी तथा आनन्द जी कल्याण जी की सहायता से तैयार करवा रही है। जो शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। संक्षिप्त से कहें तो पंजाब में जैनों के धार्मिक और सामाजिक जीवन का आधार प्रायः महासभा ही है।

श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब के अतिरिक्त उसके आश्रित स्थानीय सभाओं ने भी प्रशंसनीय कार्य किये हैं। उन में भी आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। यहां के भाई आत्मानन्द जैन हाई-स्कूल, तथा कन्या पाठशाला का संचालन कर रहे हैं। और श्री हस्तिनापुर पवित्र तीर्थ के पुनरुद्धार का सेहरा भी प्रायः अम्बाला निवासी भाइयों के सिर है। यद्यपि इस

तीर्थ की महत्ता का पारावार नहीं। श्वेताम्बर समाज का अधिक ध्यान न होने के कारण इस तीर्थ के प्राचीन जिन-मन्दिर की अवस्था शोचनीय हो चुकी थी। उक्त सभा ने देहली तथा विनौली के जैनों की सहायता से प्रयत्न करके श्रीहस्तिनापुर तीर्थ कमेटी को बनाया, जो कि अब इस परम पवित्र तीर्थ का सन्तोषजनक प्रबन्ध कर रही है। श्रीयुत लाल कीर्तिप्रसाद जी बी. ए. एल. एल. बी. वकील हाईकोर्ट. (भूतपूर्व अधिष्ठाता श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पंजाब) के परिश्रम से वहां एक पाठशाला भी स्थापित हो चुकी है। जिस से आस पास के देहात में धर्मप्रचार की अधिक सम्भावना है। अम्बाला के भाई आत्मानन्द ट्रैक्ट सोसायटी द्वारा लगभग एक सौ छोटे बड़े ट्रैक्ट तथा पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। ऐतिहासिक पुस्तकों तथा पंजाब यूनिवर्सिटी की पाठ्यपुस्तकों में जैन सम्बन्धी भूलों के सुधार के लिये यह सभा समय समय पर आन्दोलन करके संशोधन कराती रही है। इस सभा के स्वर्गीय सभ्य श्रीयुत लाला गंगाराम, ला० जगतुमल तथा बाबू गोपीचन्द बी० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट हाईकोर्ट के उत्साह से प्रेरित हो कर अन्य सभाओं ने भी पुस्तकं तथा ट्रैक्ट प्रकाशन, जीवदया प्रचार, और शासन प्रभावना के कई छोटे बड़े कार्य किये हैं।

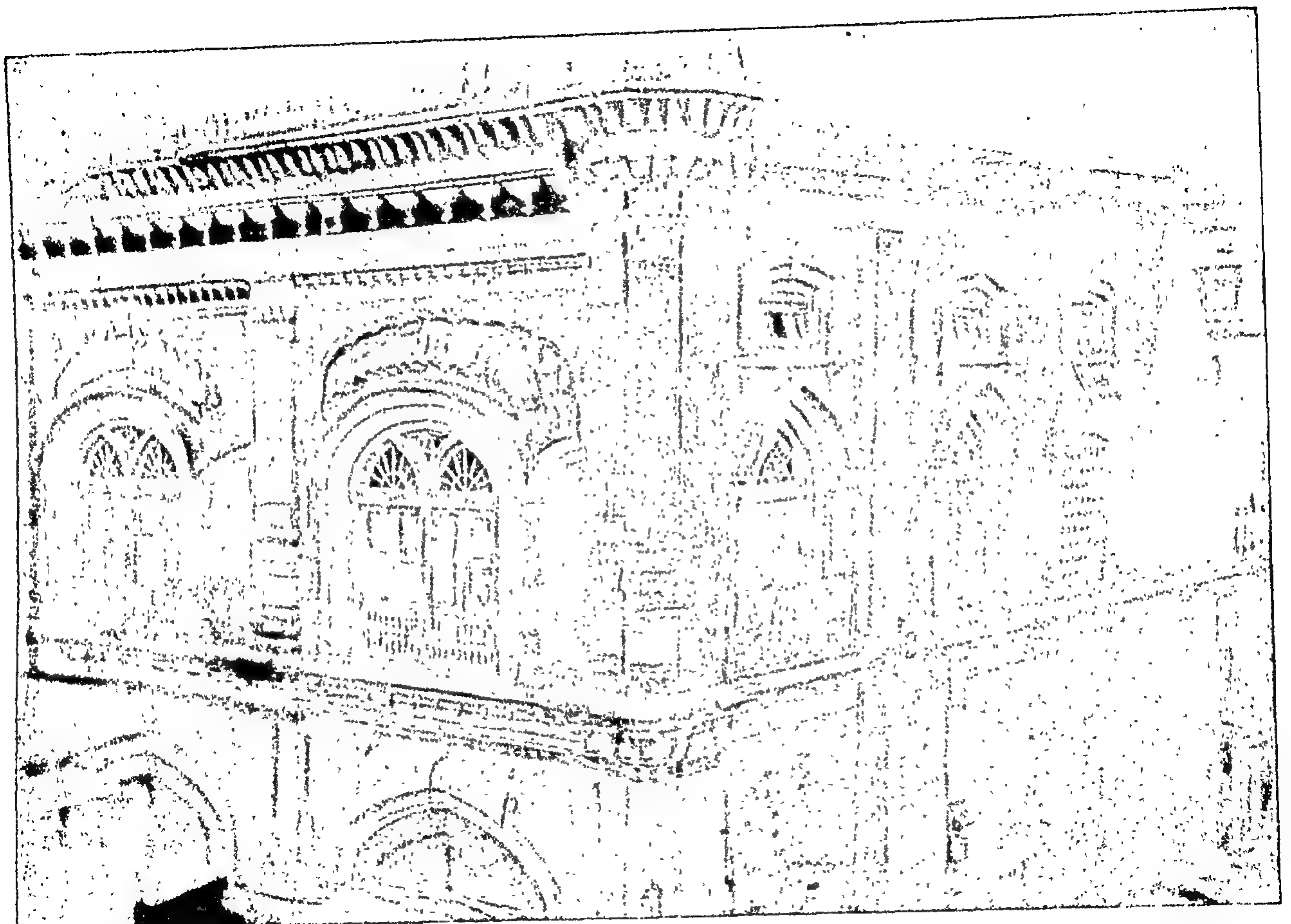
निश्चित चतुर्थ योजना को ध्यान में रखकर अम्बाला लुधियाना, होशियारपुर, जंडियाला, अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, मालेर कोटला आदि नगरों में पाठशालाएं स्थापित

हुई। इन में से केवल अम्बाला और मालेरकोटला की पाठशालाएं हाईस्कूलके पद तक पहुंची हैं। आत्मानन्द जैन हाईस्कूल अम्वाला अपने यूनिवर्सिटी के उत्तम परिक्षा-परिणामों के कारण विशेष प्रसिद्धि का पात्र वन चुका है। लुधियाना की पाठशाला अभी तक मिडिल स्कूल है, परन्तु इसके शीघ्र हाई स्कूल वन जाने की भी सम्भावना है। लाहौर और अमृतसर की पाठशालाएं वन्द हो चुकी हैं। आचार्य श्री के ध्येय को हृदय में रखते हुए श्री विजयवल्लभ सूरि जी के उपदेश से, श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पंजाव ने माघ सुदि पंचमी सम्वत् १९८३, तदनुसार १७ जनवरी सन् १९२६ से रचनात्मक कार्य प्रारम्भ किया। जिसका प्रवन्ध "श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल सोसायटी पंजाव"* की संरक्षता में इस समय गुजरांवाला में हो रहा है। श्री संघ पंजाव की सवसे वड़ी शिक्षण संस्था यही है। इसका उद्देश्य है "मानव †जीवन को व्यावहारिक, आध्यात्मिक, स्वावलम्वी और निर्भय वनाने के लिये मानसिक, वाचिक और शारीरिक विकास की साधना करना कराना, अहिंसा की पवित्र भावना का विद्यार्थियों के जीवन में संचार कर स्व पर सिद्धान्त में कुशलता प्राप्त करने के लिये जैन साहित्य और जैन दर्शन का तुलनात्मक दृष्टि से यथोचित ज्ञान कराना, साधन सामग्री के अनुसार स्वावलम्वन पूर्वक व्यावहारिक विद्याएं सिखाना, औद्योगिक शिक्षा देना,

---

* Registered under Societies Act 1860,

† श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल का पंचम वार्षिक विवरण।



जैन ज़नाना हास्पिटल जीरा

समाज और देश के व्यावहारिक जीवन में सत्य तथा ब्रह्मचर्य को प्रतिष्ठित करने के लिये विद्यार्थियों में इन आचारों को स्थापित करना; एवं शुद्ध भावना वाले समाज और राष्ट्र सेवकों की आवश्यकता की पूर्ति करना ही गुरुकुल का उद्देश्य है"।

पंचम योजना के अनुसार आचार्य श्री के स्वर्ग पधारने के थोड़ा काल पश्चात् "आत्मानन्द जैन पत्रिका" का प्रकाशन श्रीयुत बाबू यशवन्त राय जी की सम्पादकता में लाहौर से आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्र कई वर्षों तक चलता रहा। फिर आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब की देख रेख में "आत्मानन्द" मासिक पत्र अम्बाला से प्रकाशित होने लगा। श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पंजाब की ओर से त्रैमासिक 'प्रभात' का विक्रम सम्वत् १९८५ में उदय हुआ।

पंजाब के श्वेताम्बर जैनों की उपयोगी संस्थाओं में "जैन जनाना हस्पताल" जीरा तथा "जगतुमल जैन औषधालय" अम्बाला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अपने अपने स्थान पर ये संस्थाएं प्रतिवर्ष सहस्रों रोगी नर नारियों की सेवा का पुण्य प्राप्त कर रही हैं। तथा जैन समाज की ख्याति का साधन बन रही हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री के योग्य शिष्य परिवार ने अनेक श्लाघनीय कार्य किये हैं; अर्थात् उनके द्वारा जीवदया का प्रचार, पुस्तकभण्डारों का उद्धार, विद्यालय और पुस्तकालयों की स्थापना तथा नवीन शैली से जैन साहित्य का सम्पादन आदि अनेक महत्त्व के कार्य हुए और हो रहे हैं। श्री विजय कमल सूरि

जी आचार्य श्री के पश्चात् उनके स्थान पर विक्रम सम्वत् १९५७ में पाटन (गुजरात) में आचार्य पद पर आरूढ़ हुए। आप प्रसिद्ध धर्मोपदेष्टा तथा दर्शन, ज्ञान, चरित्रादि रत्नों से विभूषित थे आपने जीवदया प्रचार, मांस मदिरा भक्षण का निषेध, और सदाचार का उपदेश देकर, बहुत से नर नारियों को घोर पाप के मार्ग से हटाकर धर्मपथ पर चलाया। और नरेशों तक आपने अपने धर्मोपदेश का प्रभाव जमा कर प्रसिद्धि प्राप्त की। आपके शिष्यरत्न व्याख्यान वाचस्पति श्री लब्धिविजय जी (वर्तमान आचार्य पद से विभूषित श्री विजयलब्धि सूरि) भी योग्य धर्मोपदेष्टा हैं, आप पद्य में बड़े निपुण हैं, और कुछ उपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं। इनके शिष्य श्री गम्भीर विजय जी ने दक्षिण में मद्रास तक विहार करके जीवदया प्रचार का प्रशंसनीय कार्य किया है। वृद्ध मुनि श्री सुमति विजय जी और स्वर्गीय मुनिराज श्री अमीविजय जी ने भी लोकोपकारी कामों में अधिक जीवन व्यतीत किया है। और प्रवर्तक मुनि श्री कान्ति विजय जी तथा शान्तमूर्ति मुनि श्री हंस विजय जी महाराज और इन के शिष्य परिवार पंन्यास श्री सम्पत विजय जी, श्री चतुर विजय जी, श्री पुण्य विजय जी आदि ने जैन साहित्य और जैन पुस्तक भण्डारों के सम्बन्ध में जो अनुपम कार्य किया है, उस की जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। मुनि श्री चतुर विजय जी ने लीम्बड़ी भण्डार का सूचीपत्र बड़े परिश्रम से तैयार करके प्रकाशित कराया है। इस के अतिरिक्त उक्त मुनिजनों ने जैन साहित्य की

अनेक उपयोगी पुस्तकों का सम्पादन करके अपनी बहुमूल्य सेवाओं से समाज को ऋणी बनाया है। तथा और भी बहुत सी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जिस से संसार सदा लाभ उठाएगा। तथा इन महानुभावों के परिश्रम को पाश्चात्य विद्वानों ने भी उचित शब्दों में स्मरण किया है।

आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी ने शिक्षा प्रचार के कार्य में विशेष उद्योग किया है। आप के धर्मोपदेश से विक्रम सम्वत् १९७३ में वेरावल में 'आत्मानन्द जैन स्त्री शिक्षण शाला' और 'आत्मानन्द जैन औषधालय' स्थापित हुआ। पालनपुर (गुजरात) में 'एजूकेशन फण्ड' की योजना तयार हुई। वम्बई में 'श्री महावीर जैन विद्यालय' की स्थापना आपके भरसक परिश्रम का परिणाम है। विक्रम सम्वत् १९८३ में श्री वरकाणा तीर्थ के शुभ स्थान पर 'श्री पार्श्व नाथ जैन विद्यालय वरकाणा' (मारवाड़) की स्थापना हुई। इसके थोड़ा समय पीछे 'श्री पार्श्वनाथ उमेद जैन बाला-श्रम' उमेदपुर रियासत जोधपुर में जारी हुआ। सच तो यह है कि इन दो उपयोगी शिक्षण संस्थाओं के द्वारा मारवाड़ गोलवाड़ के जैनों की बड़ी लाभदायक सेवा हो रही है। यदि इन संस्थाओं का संचालन भली प्रकार होता रहा, तो ये संस्थाएं सुधार के रूप में समाज की काया पलटने में अद्वितीय सिद्ध होंगी। आपके शिष्यप्रवर, गुरुभक्त उपाध्याय श्री ललित विजय जी शिक्षा प्रचार और शिक्षण संस्थाओं की देख रेख में अधिक रुचि रखते हैं। आप के शिष्य स्वर्गीय उपाध्याय श्री मुनि सोहन विजय जी श्री

आत्मानन्द जैन महासभा के प्राण थे। महासभा पञ्जाब का जन्म और उसकी प्रगति का अधिक से अधिक श्रेय आप ही को है। और मुनि श्री चरण विजय जी इस समय युवकों को उत्साहित करने में संलग्न हैं।

स्वर्गीय उपाध्याय श्री वीर विजय जी स्वर्गीय आचार्य श्री के शिष्यों में उच्च कोटी के साधु थे और इनके शिष्य स्वर्गीय श्री विजयदान सूरि जी ने भी अपने शिष्य परिवार द्वारा शासन की अच्छी सेवा की है। आपके शिष्य परिवार में भी कई एक विद्वान् तथा योग्य साधु विद्यमान हैं। इस प्रकार आचार्य श्री के पश्चात् उनके शिष्य परिवार ने पंजाब तथा पंजाब से बाहर उत्कृष्ट धर्म कार्य किया है। "आत्मानन्द जैन प्रकाश" गुजराती मासिक पत्र भावनगर से आचार्य श्री के जीवन काल में उदित हुआ, और अब तक निरन्तर समाज सेवा कर रहा है।

आचार्य श्री के पश्चात् भी पंजाब के स्थानिकवासी जैनों का कुछ समय तक श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनों से विरोध रहा, और आचार्य श्री के शिष्यों से शास्त्रार्थ होते रहे। नाभा का शास्त्रार्थ—जो मुनि श्रीवल्लभ विजय जी और स्थानिकवासी साधु मुनि श्री उदयचन्द जी के मध्य में हुआ, विशेष प्रसिद्ध है। नाभा के राज पण्डितों ने जो राज दरबार की ओर से मध्यस्थ नियत हुए थे. निर्णय मुनि श्री वल्लभ विजय जी के पक्ष में दिया था। वैशाख शुल्का १० सम्वत् १९६५ को स्वर्गीय आचार्य श्री की विशाल सुन्दर समाधि का प्रतिष्ठा महोत्सव आचार्य श्री विजय कमल सूरि जी के

पवित्र कर कमलों से हुआ था। उस समय की धूमधाम देखकर ईर्ष्या के कारण स्थानकवासी भाइयों से और तो कुछ न बन सका, एक ट्रैक्ट द्वारा स्थानीय सनातन धर्मियों को आचार्य श्री की पुस्तक "अज्ञानतिमिरभास्कर" को आगे रखकर उन के विरोध के लिए उभारा*। इस पुस्तक में आचार्य श्री ने वेद, स्मृति, उपनिषद् और पुराणादि शास्त्रों में जैसा यज्ञों का वर्णन है, विस्तार से दिखलाया है। उक्त ट्रैक्ट से उत्तेजित होकर सनातन धर्मी भाइयों ने जैनों से वाद विवाद किया पं० भीमसेन जी शर्मा विद्यावारिधि, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा पं० गोकुल चन्द जी सनातन धर्मियों की ओर से शास्त्रार्थ के लिये आए थे। वे यह कहते थे कि श्री आत्माराम जी महाराज ने वेदादि शास्त्रों से जो प्रमाण दिये हैं वे असत्य हैं। दूसरी ओर से जैन पण्डित उन्हें सत्य सिद्ध करते थे। पण्डित ज्वाला सहाय डिस्ट्रिक्ट जज गुजरांवाला, तथा मिस्टर बी० सी चैटरजी बी० ए० हैडमास्टर शास्त्रार्थ के मध्यस्थ नियत किये गए थे। इस शास्त्रार्थ का निर्णय भी जैनों के पक्ष में हुआ। और उक्त मध्यस्थों के प्रयत्न से जैनों और सनातन धर्मियों के मध्य जो मनोमालिन्य उत्पन्न हुआ था वह दूर होकर पुनः भ्रातृ भाव जागृत हुआ। विक्रम सम्वत् १९६९ (१३-६-१९१२)

---

*आज यह कहते हुए हर्ष होता है कि अब इन दोनों सम्प्रदायों में परस्पर का विरोध बहुत अंश तक कम हो गया है, और उत्सवादि कार्यों में एक दूसरे का हाथ प्रेम पूर्वक बटाने लगे हैं, और परस्पर में भ्रातृभाव बढ़ने लगा है।

को बड़ौदा में प्रथम वार आचार्य श्री के शिष्य परिवार का सम्मेलन आचार्य श्री विजय कमल सूरि जी की अध्यक्षता में हुआ, जिस में पचास साधु सम्मिलित हुए। मुनि श्री वल्लभ विजय जी (श्री विजयवल्लभ सूरि जी) ने सम्मेलन का उद्देश्य वर्णन करते हुए कहा था "ऐसे सम्मेलन करने से अपने मुनि दूर दूर देशों से आकर, एक स्थान में मिलते हैं। इस से दर्शन का लाभ होता है, एक दूसरे की पहिचान नहीं है, वह भी होती है। और आपस में प्रीति भाव बढ़ता है। उस से जो धर्म सम्बन्धी कार्य हों उनमें एक दूसरे की मदद का मिलना, और अपने इस सम्मेलन को देखकर अन्य भी इस प्रकार से धर्मोन्नति के लिए सम्मेलन करना सीखें, जिस से दिन प्रति दिन शासन की उन्नति हो*"। आपने यह भी कहा था कि जैन साधु फिरते राम होते हैं, ऐसी हालत में स्वार्थी जन कुसम्प कराने के लिए एक दूसरे की सच्ची झूठी बात से विक्षेप डालते हैं। वे सब मुनि सम्मेलन द्वारा दूर हो सकते हैं। और विशेष कहा "मोटे से मोटा फाइदा तो यह है कि अपने में एकता की मजबूती होगी। इस ऐक्य की ज़रूरत प्राचीन व अर्वाचीन हर एक वक्त में थी, और है। यदि हमारे में एकता होगी तो ही हम हर एक धर्म कार्य को पूरा कर शासन की उन्नति कर सकेंगे। और अपने इस कार्य का अन्य भी अनुकरण करेंगे। उस से भी हम को फाइदा होगा। सम्मेलन में साधु विद्वान् वर्ग के एकत्रित होने से, उन विद्वानों के जुदे जुदे आशय,

* आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ५४।

व तरह तरह के अनुभवी विचारों के प्रकट होने का भी यह एक उत्तम साधन है। जब कभी किसी धर्म सम्बन्धी कार्य को तरक्की कर उसे ऊंचे दरजे पर पहुंचाना हो, या कोई भी सुधार करना हो तो ऐसे सम्मेलन से ही हो सकता है*"।

सभापतिमहोदय ने अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा था "अपने साधुओंका कर्तव्य उच्चतत्त्वों का अधिक प्रचार कर अर्हन् परमात्मा श्री महावीर भगवान् ने, जगत के उद्धार निमित्त जो रास्ता बताया है, उसे जगत्-वासी जीवों को दिखाने का है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है, कि उस तरफ अपनी दृष्टि जैसी चाहिए वैसी नहीं रहने के सबब, तथा अन्दर २ के अमुक मत भिन्न होने के कारण हम तुम अर्थात् समग्र मुनिवर्ग उपरोक्त स्व कर्तव्य का पालन नहीं कर सके‡"। अपने भाषण को जारी रखते हुए उस समय आपने जतलाया था कि श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी के शिष्य समुदाय में देश कालानुसार प्रायः आचार सम्बन्धी शिथिलता नहीं, तो भी भविष्य के लिये समयानुसार कितने एक नियम करने की आवश्यकता मालूम देती है। अनुचित दीक्षा पर विचार प्रकट करते हुए आपने कहा था—"कितने एक साधु देश काल का विचार किए बिना शिष्यपरिवार बढ़ाने के लालच में फंसकर ऐसे ऐसे कार्य करते हैं, जिस से कि धर्म की और कौम की न सही जाय ऐसी बदनामी जैनेतर लोग करते हैं। और इस पवित्र धर्म की तरफ घृणित

---

* आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ५५। ‡ आदर्श० उ० पृ० ५८।

विचार प्रकट करते हैं"। अन्त में आपने इस बात पर जोर दिया—"वर्तमान समय में प्रचलित राजभाषा जोकि इंगलिश है उसका ज्ञान भी साधुओं में होने की जरूरत है। कितने एक साधुओं की इतनी संकुचित वृत्ति है, कि उपाश्रय के बाहर क्या हो रहा है, इसका भी पता नहीं है। ..... अपनी उन्नति में योग्य ध्यान नहीं देना अतीव चिन्तनीय है"†।

मुनि सम्मेलन ने तीन दिन में चौवीस प्रस्ताव स्वीकृत किये जो संक्षिप्ततया इस प्रकार हैं—

१. चतुर्मास आचार्य श्री की आज्ञा से हो।

२. एक चतुर्मास के ऊपर दूसरा चतुर्मास विना किसी खास कारण के साधु एक ही स्थान पर न करें।

३. समुदाय का कोई साधु एकल विहारी नहीं होना चाहिए।

४. यदि कोई साधु अपने गुरु तथा बड़े को छोड कर किसी दूसरे साधु के पास जाए तो वह उसे अपने साथ न मिलाए।

५. जिसने एक बार दीक्षा लेकर छोड़ दी हो उसे फिर आचार्य महाराज की आज्ञा के विना दीक्षा नहीं देनी।

६. साधु प्रायः मोटे २ शहरों में और उसमें भी खासकर गुजरात देश में चतुर्मास करते हैं, ऐसा न होना चाहिए। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए मुनि श्री वल्लभविजय

---

† आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ६२—६३।

जी ने साधुओं के देश देशान्तर में विहार की आवश्यकता जतलाई। आपने कहा था "जरा पालीताणा की तर्फ ख्याल करो। तीर्थ की आड लेकर कितने साधु साध्वी हर साल वहां के वहां ही समय गुजारते हैं। कभी बहुत जोर मारा तो भावनगर और उस से अधिक अनुग्रह किया तो अहमदाबाद। बस इधर उधर फिर फिरा फिर पालीटाणा का पालीताणा। श्वसुर-गृह से पितृगृह और पितृगृह से श्वसुर गृह, ज्यादा जोर मारा कभी मातुलगृह के जैसा हाल हो रहा है"†। अपने विचार प्रदर्शित करते हुए आपने कहा था—"याद रखना जितनी आजकल साधु-साध्वियों की बेकदरी हो रही है, आइन्दा को इससे अधिक होगी। क्या यह थोड़ी बेकदरी है! साधु साध्वियों के शहर में होते हुए भी कितने एक अमीर लोग तो क्या गरीब भी उस तरफ नजर करते झिझकते हैं। यह किसका प्रभाव? एक के एक ही स्थान में ममत्व बान्धकर रहने का न कि अन्य किसी का? क्या कभी आपने सुना था या सुना है? कि स्वर्गवासी महात्माश्रीमद् विजयानन्द सूरि महाराज जी अमुक उपाश्रय में या अमुक स्थान में ही रहते थे? कभी भी नहीं। बस यही कारण समझिये जो कि उनकी निसबत कुल हिन्दोस्तान के जैनों के मुख से एक सरीखा ही उद्गार निकलता है। क्योंकि उन्होंने कोई अपना नियत स्थान नहीं माना था। और न हीं वे अमुक सेठ के गुरु खास करके कहे जाते थे। और कहे जाते हैं"*।

†आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ७२। *आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ७४।

७. साधु लोच अवश्य करे। बीमारी के कारण यदि ऐसा न हो सके तो आचार्य से आज्ञा लेवे।

८. साधु उपाश्रय में कपड़ा आदि कोई वस्तु नहीं लेवे।

९. अपनी वस्तुएं गृहस्थियों से न उठवावे।

१०. तपस्या अवश्य करे।

११. प्रति दिन कम से कम १०० श्लोक का स्वाध्याय करे।

१२. सोने चान्दी की या उसके जैसी चमक वाली चश्मे की फरेम न रखे।

१३. साधुओं को जैनों के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी जाहिर व्याख्यान द्वारा लाभ देने का रिवाज रखना चाहिये। इस प्रस्ताव को पेश करते हुए, मुनि श्री विजय वल्लभ जी ने कहा था "अपने पूर्व ऋषि महात्माओं ने जो लाखों जीवों को जैन धर्म के अनुयायी बनाया है वह केवल उपाश्रय में ही बैठ कर नहीं बनाया, किन्तु राजदरबार आदि अन्य अन्य स्थानों में उपदेश देकर ही बनाया है। यदि वे महात्मा आजकल की तरह उपाश्रय में ही बैठे रहते तो कई एक राजा महाराजा, सामन्त, मन्त्री सेठ साहूकार व अन्य लाखों मनुष्य जैन धर्मी किस तरह होते? भगवान् महावीर स्वामी ने जैन धर्म का ठेका किसी खास अमुक व्यक्ति या जाति को नहीं दिया है, किन्तु उन्हों ने तो दुनिया के उपकारार्थ धर्म फरमाया है*"।

१४. पत्र व्यवहार केवल बड़ा साधु करे अन्य नहीं।

---

* आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ८२।

१५. जीवदया के काम में साधु अजैनों की सहायता करें।

१६. यह प्रस्ताव अहमदाबाद निवासी मोहनलाल लल्लू भाई के आक्षेपों को सहन कर शान्ति रखने के लिये श्री कान्ति विजय जी आदि साधुओं को धन्यवाद देने का था।

१७. नवीन साधुओं की शिक्षा के सम्बन्ध में।

१८. साधु गृहस्थियों से कपड़े न धुलवाएं।

१९. साधु कीमती वस्त्र तथा बहुमूल्य धुस्से न रखें।

२०. दीक्षा लेने वाले पुरुष की भली प्रकार परीक्षा हो और उसके सम्बन्धी माता पिता स्त्री आदि को रजिस्टर्ड पत्र द्वारा सूचित किया जावे।

२१. साधुओं के या श्रावकों के भीतरी झगड़ों में समुदाय के साधुओं को शामिल न होना चाहिये। धार्मिक कार्य के लिये यदि शामिल होना पड़े तो आचार्य महाराज से आज्ञा मंगवाई जावे। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते समय प्रवर्तक श्री कान्ति विजय जी ने कहा था "यह स्पष्ट ही है कि साधुका या गृहस्थ का चाहे जिसका टण्टा हो उसमें पड़ने से अपने पठन पाठन, ज्ञान ध्यान में अवश्य नुकसान होगा। दूसरा ऐसे झगड़ों में पड़ने से पक्षपाती या अविश्वासु होने का सम्भव है‡"।

२२. इस प्रस्ताव में साधुओं के पारस्परिक अनमेल पर शोक प्रकट किया गया। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए श्री कान्तिविजय जी महाराज ने कहा था—"सामान्य-

‡ आदर्शजीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ ९२।

तया हम साधु कहलाते हैं, तो क्षमागुण अपने अन्दर होना ही चाहिये। यदि क्षमा नहीं तो साधु पना ही क्या? जहां क्षमा गुण है वहां कुसम्प रह ही नहीं सकता। परन्तु इस समय तो उलटा ही नजर आता है। जितना सम्प अपने अन्दर चाहिये उतना दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी करण धर्मोन्नति के बड़े बड़े कार्य बीच में लटक रहे हैं†"।

२३. यह प्रस्ताव अनुचित दीक्षा के सम्बंध में था। जो दीक्षा के अयोग्य हैं, उन्हें शिष्य बनाने के लालच से कदापि दीक्षा न दी जावे। यदि कोई मुनि ऐसी खट पट में पड़े, तो उसके लिये आचार्य जी महाराज सख्त विचार करें। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए मुनि श्री चतुरविजय जी ने कहा था—"इस प्रकार की दीक्षा से साधुओं की हद से ज्यादा निन्दा होती सुनने में आता है, जिस से कितने एक जैन या जैनेतर लोगों के मन में साधुओं पर अप्रीति होती जाती है। कितनी एक जगह तो विचारे श्रावकों को सैंकड़ों बल्कि हजारों के खर्च में उतरना पड़ता है*"।

२४ धन्यवाद।

आचार्य श्री के पश्चात विविध प्रकार से धर्म प्रचार के कार्य हुए, उद्यापन-उजमणे, और प्रतिष्ठा महोत्सव हुए, वरघोड़े और जलूस निकाले गये, पुस्तकालय, पाठशाएं और गुरुकुल स्थापित किये गये, सभा और सोसायटियों ने जन्म लिया, पुस्तकें लिखी गईं, समाचार पत्र प्रकाशित हुए। अब प्रश्न उठता है कि क्या आचार्य श्री के पश्चात्

---

* आदर्श जीवन उत्तरार्द्ध पृष्ठ पृष्ठ ९३। † पृष्ठ ९८।

उनके शिष्य परिवार को अपने गुरु के ध्येय की पूर्ति में सफलता हुई ? उत्तर स्पष्ट है कि भरसक परिश्रम करते हुए भी सफलता प्राप्त नहीं हुई, इसके कारणों पर विचार करना आवश्यक है। बड़ौदा मुनि सम्मेलन के स्वीकृत प्रस्तावों से प्रकट है, कि रोग की चिकित्सा अच्छी तरह से की गई थी। यदि मुनि सम्मेलन के प्रस्तावों पर अमल होता, तो अवश्य सफलता प्राप्त होती, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। शिष्य परिवार की असफलता के कारण निम्न लिखित हैं—

(१) पारस्परिक वैमनस्य—इस रोग का परिणाम यह हुआ कि साधुओं मे रागद्वेष उत्पन्न हो कर ईर्ष्या बढ़ गई। यदि कोई मुनि राज अच्छा कार्य भी करता है तो वह ईर्ष्या के कारण दूसरों को बुरा लगता है, एक साधु दूसरे साधु की मान प्रतिष्ठा को सहन नहीं कर सकता। यदि एक की रुचि पुस्तक भण्डारों की ओर है तो दूसरे की शिक्षाप्रचार की ओर है, तीसरा तत्वज्ञानी है, तो चौथा शास्त्रार्थ तथा खण्डन मण्डन में निपुण है। साधुओं का संप होतो इन सब गुणियों के इकट्ठा होने से जैन धर्म का डंका बजने लगे, खेद यह है कि कुसम्प के कारण एक का गुण दूसरे को बुरा लगता है। जब महावीर विद्यालय बम्बई जैसी उपयोगी संस्था का विरोध होने लगा, तब यह बात जगत् विख्यात हो गई, कि विरोध संस्था से नहीं, बल्कि उस के संस्थापक से है। शिक्षण संस्थाओं के विषय में अनेक प्रकार का भ्रान्त वातावरण उत्पन्न किया जाता है।

शिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रम में कितना भी धर्म अभ्यास तथा क्रियाकाण्ड रख दिया जाय, फिर भी विरोध होता ही रहेगा, यह सब वैमनस्य के कारण ही है। शिष्य परिवार की असफलता का प्रधान कारण यही वैमनस्य है, इस के दूर करने के लिये अवश्य प्रयत्न होना चाहिये।

(२) साधुओं की शिथिलता—मुनि सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव साधुओं की शिथिलता दूर करने के लिये भी स्वीकृत हुए थे। आज भी बहुत से साधु निजी सुख और आराम के लिये गुजरात-काठियावाड़ में रहना पसंद करते हैं। जिन देशों में कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है वहां पर विचर कर परिषह सहन करते मालूम नहीं देते। कुछ साधु किसी न किसी कारण से एक ही स्थान पर कई साल तक चतुर्मास करते हैं, और जहां पर प्रचार की आवश्यकता है वहां पर नहीं जाते। धर्मध्यान, क्रियाकण्ड, आहार विहार, हर बात में दिन प्रतिदिन शिथिलता अधिक होती जा रही है। जिसे दूर करने के लिये मुनि सम्मेलन के प्रस्तावों को अपनाना चाहिये।

(३) शिक्षा के प्रति अरुचि—दीक्षा देने के लिए विद्या संबन्धी योग्यता का तनिक भी विचार नहीं किया जाता। प्रायः अशिक्षित व्यक्ति ही दीक्षित कर दिये जाते हैं। नव दीक्षितों के पठन पाठन का योग्य प्रबन्ध भी नहीं है। और न ही गुरुओं को अपने शिष्यों को पढ़ाने का अवसर मिलता है। शिक्षा के अभाव में साधु के कर्तव्य का यथोचित पालन नहीं हो सकता है। इस वैज्ञानिक युग में तुलनात्मक उच्च

कोटि की शिक्षा के विना धर्म प्रचार का कार्य भी संपन्न नहीं हो सकता। वर्तमान काल में सार्वजनिक व्याख्यान शासन-प्रभावना के मुख्य साधन हैं। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए साधुओं की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना बहुत ज़रूरी प्रतीत होता है, अर्थात् साधु जीवन की सफलता के लिये सरस्वती-मन्दिर जिस में वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षा प्राप्त करके वास्तविक रूप में धर्म प्रचारक बन सकें।

(४) शिष्य का मोह—आत्मकल्याण के लिये दीक्षा का लेना और देना श्रेष्ठ है, परन्तु शिष्य मोह में आ कर अयोग्य दीक्षा का देना हानिकारक है। मुनि सम्मेलन बड़ौदा में मुनि श्री चतुर विजय जी ने ओजस्वी शब्दों में अनुचित दीक्षा की हानि बतलायी थी। उन का कहना सत्य है कि अयोग्य दीक्षा के कारण श्रावकों को हजारों के खरच में उतरना पड़ता है। लोक निन्दा के अतिरिक्त मुकदमे तक नौबत आती है। अयोग्य दीक्षा के सम्बन्ध में गत वर्षों में जैन समाचार पत्रों में जो खटपट चलती रही है, उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह खेदजनक थी। फलस्वरूप अहमदाबाद का मुनि सम्मेलन हुआ, जिस में एक हजार से अधिक साधु साध्वी संमिलित हुए, शास्त्र-मर्यादा को सन्मुख रखते हुए दीक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, समाचार पत्रों से पता चला है कि उक्त प्रस्ताव का यथार्थ रीति से पालन नहीं हो रहा है। अयोग्य दीक्षा अर्थात् शिष्य मोह ने श्रावकों की श्रद्धा को कम किया है और साधुओं की मान प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाई है।

भी हरा भरा है। नाना प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्प इसे सुवासित कर रहे हैं। एक ही फुलवाड़ी के फूल—गुलाब, गेन्दा, चम्पा, चम्बेली, मोतिया आदि यदि एक दूसरे को ताना देवें कि तेरा रंग अच्छा नहीं, तेरी सुगन्ध तीक्ष्ण है, तो कितना खेदजनक दृश्य होगा। एक ही भांति के फूलों की क्यारी इतनी शोभा नहीं देती, जितनी कि नाना प्रकार की रंग बरंगी फुलवाड़ी। बिखरे हुए फूलों की इतनी कदर नहीं होती, जितनी कि एक गुलदस्ता की होती है। अकेला फूल मुरझा कर गिर पड़ता है, परन्तु गुलदस्ता आदर से रमणीय स्थान पर रक्खा जाता है। आचार्य श्री के शिष्य परिवार का, गुलदस्ता के फूलों की भान्ति संगाठित होकर स्वर्गीय न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री विजयानन्द सूरि जी के दिव्य सन्देश से संसार को सुगन्धित करना परम कर्तव्य है।



परिशिष्ट नं० १

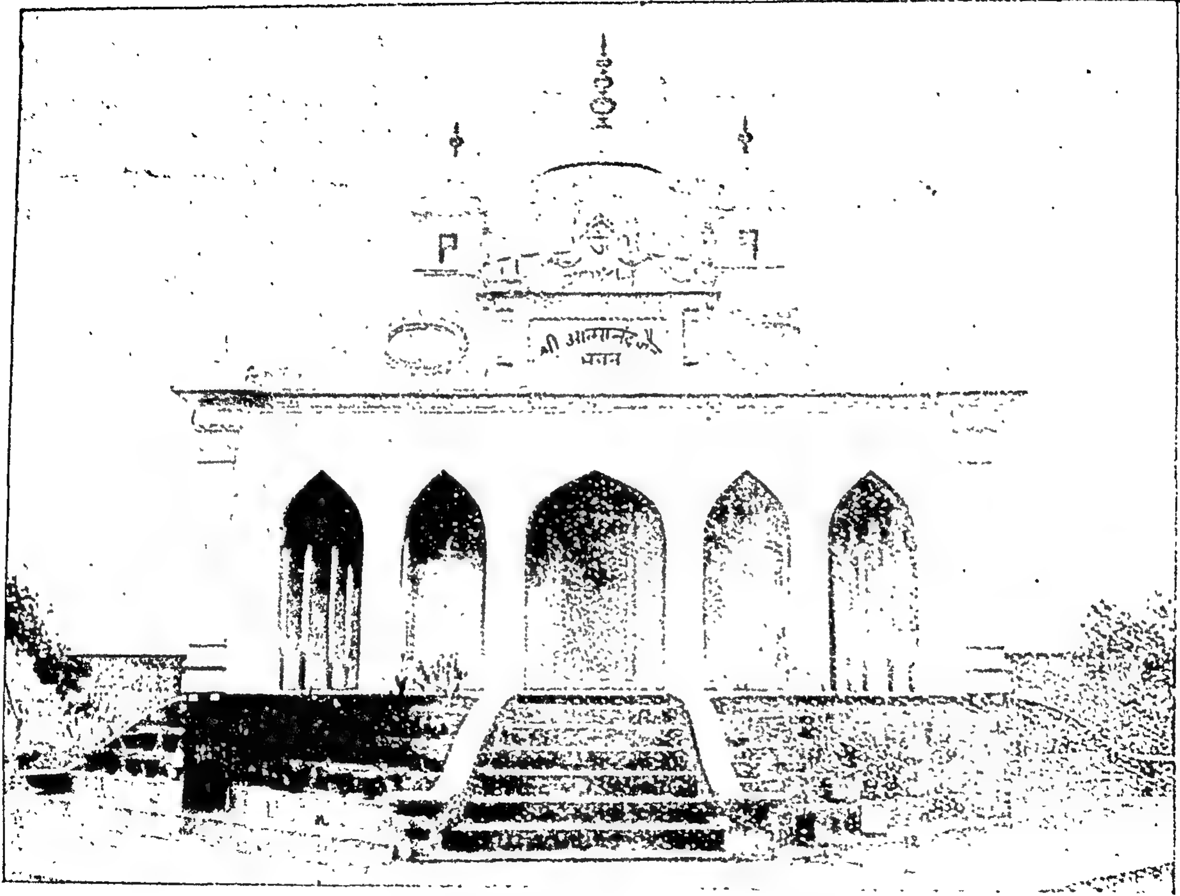
आचार्य श्री के जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा

नं०	विक्रम सं०	ईस्वी सन्	
१	१८९३	१८३६	जन्म—लहरा गांव चैत्र शुदि १
२	१९०६	१८४९	ला. जोधेशाह के पास जीरा में रहने लगे।
३	१९१०	१८५३	मालेर कोटला में स्थानकवासी दीक्षा जीवनरामजी महाराज से ली।
			चातुर्मास
४	१९११	१८५४	रानिया
५	१९१२	१८५५	सरगाथल
६	१९१३	१८५६	जयपुर
७	१९१४	१८५७	नागोर
८	१९१५	१८५८	जयपुर

परिशिष्ट नं० ३

जीरा और श्री आत्माराम जी

न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानन्द सूरि जी प्रसिद्ध नाम श्री आत्माराम जी महाराज का जन्म जीरा के निकटवर्ती ग्राम लहरा में हुआ। बाल्यावस्था से ही आपका पालन पोषण जीरा में होता रहा। आपके हृदय में जैन धर्म की श्रद्धा का अङ्कुर इसी जगह प्रस्फुटित हुआ। वैराग्य-भावना भी यहां पर उत्पन्न हुई। स्थानक-वासी दीक्षा के पश्चात् वि० सं० १९१० में जब आपने जीरा में चतुर्मास किया तब आपको शास्त्रों के परिशीलन से पता लगा कि जैन ग्रंथों में मूर्तिपूजा का वर्णन है। इस स्थान पर प्रायः आपने अपने मूर्तिपूजा के विचारों को दृढ़ किया। दश वर्ष पश्चात् वि० सं० १९२९ में आपका चतुर्मास फिर इस जगह हुआ। जब कि आपने जैनों को दृढ़ मूर्तिपूजक बनाया। वि० सं० १९४८ में जीरा के जिनमंदिर का प्रतिष्ठामहोत्सव आप ही के पवित्र हाथों



श्री आत्मानंद जैन भवन जीरा

के कारण धर्मोपदेश भी दिया करते थे उस समय श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधुओं का आगमन न होने के कारण जैन प्रायः स्थानकवासी साधुओं के अनुयायी थे। ज्ञानचन्द जी खरतर गच्छ के थे। वे प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री दादा जिनदत्त सूरि जी के उपासक थे। और उनके पद-चिन्ह का पूजन किया करते थे। जीरा के विद्यमान जैन भी पूजके उपदेश से इसी प्रथा के अनुयायी हो गए, जो अब तक श्वेताम्बर तथा स्थानक वासी भाइयों में प्रचलित है। ज्ञानचन्द जी जिन-प्रतिमा का पूजन भी प्रतिदिन करते थे। उस समय लोगों के हृदय इतने संकुचित न थे। वे पूज के स्थान पर जाकर तीर्थंकर भगवान् की आरती से पूजन किया करते थे। पूज जी की लाई हुई उस समय की संगमरमर की जिन भगवान् की मूर्ति अब तक जैन मन्दिर में रखी हुई है।

धर्म-कार्य

आचार्य श्री के प्रताप से जीरा धर्म कार्यों में सदा अग्रसर रहा है। नगर में जैनों की अल्प संख्या होते हुए भी अब तक उनका प्रभाव अच्छा बना हुआ है। समय समय पर जीव-दया के प्रचार के कारण प्रायः हिन्दू जनता मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से बची रही है। एक भव्य जिनमन्दिर के अतिरिक्त, विशाल "आत्मानन्द जैनभवन" [जो गुरुणी श्री देव श्री जी के चतुर्मास में उनके सदुपदेश से पूर्णतया तैयार हुआ

है] नगर से बाहर लहरा ग्राम की ओर सड़क पर स्थित है। जहाँ प्रतिदिन नगरवासी सायं प्रातः वायु सेवन करके शुद्ध स्वास्थ्य को प्राप्त करते हैं। यहाँ पर युवकों के लिए व्यायाम का भी प्रबन्ध है। जैन कुमार सभा जीरा जो अब आत्मानंद जैन सभा में परिणत हो चुकी है, ने भी अच्छा काम किया है। उक्त सभा के अधीन एक "पिंजरा पोल" स्थापित हुआ जिसमें पीड़ित जीवों की भली प्रकार रक्षा की गई। नगरवासियों के लाभ के लिए शास्त्र-भण्डार के अतिरिक्त एक अच्छा पुस्तकालय कायम है। जिसमें सामयिक नवीन पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। इस पुस्तकालय के साथ एक सार्वजनिक वाचनालय भी है। समय समय पर ट्रैक्ट प्रकाशित किए जाते हैं। ला० राधामल्ल के सुपुत्र ला० नत्थूराम ने आचार्य श्री की पुस्तक "चिकागो प्रश्नोत्तर" का उर्दू अनुवाद करके प्रकाशित किया है। और "चिदानन्द-शिवसुन्दरी-विलास," "भगवान् महावीर स्वामी की जीवनी," "उम्मेद की झलक," "नसीहतों का गुलदस्ता," "जैन धर्म की प्राचीनता," और कई एक उपयोगी पुस्तकें तथा ट्रैक्ट लिखे हैं। जीरा निवासी ब्रह्मचारी शंकरदास जी श्रेष्ठ धर्मोपदेष्टा हैं और पंजाब के जैनों में प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। आपने भी कई उपयोगी हिन्दी पुस्तकें लिख कर साहित्य सेवा की है। यहाँ के स्वर्गीय श्रावक हकीम हरदयालमल जी अपने कार्य में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आप मुनिसेवा का अवसर मिलने पर अपने सब कार्य छोड़ कर दूर देशों तक जाया करते थे। जीरा के जैनों की

सब से उपयोगी संस्था "जैन जनाना हस्पताल है" जिस पर प्रति वर्ष लगभग दो हजार रुपया व्यय होता है। इस संस्था से न केवल नगरवासी ही परन्तु आसपास के ग्राम भी लाभ उठाते हैं।

साधुओं के चतुर्मास

आचार्य श्री के तीन चतुर्मासों के अतिरिक्त और भी कई चतुर्मास जीरा में समय समय पर हुए। जिनमें से कुछ यहाँ लिखे जाते हैं—वि० सं० १९५१ में आचार्य श्री के दर्शन को बीकानेर से साध्वी चन्दन श्री जी, देव श्री जी आदि पधारी थीं। और जीरा में ही चतुर्मास किया। गत तीन शताब्दियों में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साध्वियों का पंजाब देश में यह प्रथम चतुर्मास कहा जाता है। वि० सं० १९६२ में आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि जी का चतुर्मास हुआ था। फिर वि० सं० १९६७ और वि० सं० १९७२ में मुनि श्री अमी विजय जी, रवि विजय जी का चतुर्मास हुआ था। इसी वर्ष कार्तिक को महाराज अमीविजय जी की उपस्थिति में जीरा में पञ्चमी उद्यापन महोत्सव हुआ था। इस अवसर पर बहु संख्या में भजनमण्डलियों के सहित जैनभाई सम्मिलित हुए थे। श्री हीरविजय जी, सुमति स्वामी जी, हंसविजय जी, सम्पतविजय जी, वीरविजय जी आदि मुनिराजों ने अपने चतुर्मासों से इस नगर को पवित्र किया। साध्वी

श्री देव श्री जी, हेम श्री जी आदि ने वि० सं० १९९० और ९१ के चतुर्मास ज़ीरा में किए।

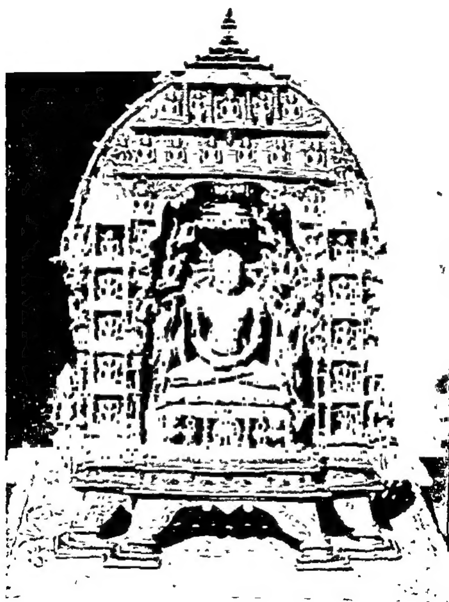
आचार्य श्री विजय कमल सूरि जी का दीक्षा महोत्सव वि० सं० १९२९ में ज़ीरा में हुआ था। आचार्य श्री की तरह आपको भी ज़ीरा से प्रेम था।

श्री पार्श्वनाथ जिनमंदिर

आचार्य श्री के उपदेश से इस मंदिर का निर्माण वि० सं० १९४४ में हुआ और वि० सं० १९४८ में पांच मंजिल शिखर तक बन कर तैयार हुआ। इसकी ऊँचाई ९० फुट से कम नहीं है। पंजाब भर के जिन मंदिरों में यह अद्वितीय है। रंगमण्डप में नकशो निगारी है। दीवारों पर शिक्षाप्रद चित्ताकर्षक चित्र बने हुए हैं। तीर्थङ्कर भगवान् की मनोहर मूर्ति के दर्शन से मन शान्त हो जाता है। इस मंदिर में सबसे प्राचीन प्रतिमा धातुमय चतुर्विंशति-पट्टक वि० सं० ११५६ की प्रतिष्ठित है। मूर्ति पर निम्न लिखित लेख खुदा हुआ है—

चतुर्विंशति-पट्टक

संवत् ११५६ माघ सुदि १४ शुक्रे
आसीत् प्राग्वादवंशस्य भूषको विहिलाभिधः।
पत्नी सलहिका तस्य जिनदत्तः सुतस्तयो ॥१॥
भार्या च रोहिणी तस्य पुत्रौ सागररोहिकौ।
दुहिता सिंहिणी वान्या वधू सहजमती तथा ॥२॥



चतुर्विंशति पट्टक ११५६ का] प्रतिष्ठित



चतुर्विंशति पट्टक का पिछला भाग